उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

UGED-01
शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार

खण्ड
3
दार्शनिक दृष्टिकोण से शैक्षिक समस्याएँ

इकाई-9 शिक्षा में व्यक्ति एवं समाज	5
इकाई-10 धर्म और शिक्षा	18
इकाई-11 शैक्षिक मूल्य	36
इकाई-12 स्वतंत्रता तथा अनुशासन	56

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

डॉ0 सरोज पाण्डेय	वरिष्ठ उपाचार्य एन0सी0ई0आर0टी0, नयी दिल्ली

सम्पादक

प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 यू0 एन0 तिवारी	प्रवक्ता, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से श्री एम0 एल0 कनौजिया, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, अगस्त 2009,
मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

UGED-01 शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार

खण्ड 1- शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई-1 शिक्षा, दर्शन एवं शिक्षा -दर्शन

इकाई-2 प्रकृतिवाद

इकाई-3 आदर्शवाद

इकाई-4 प्रयोजनवाद तथा यथार्थवाद

खण्ड 2- प्रमुख शिक्षाशास्त्री

इकाई-5 प्लेटो एवं रूसो

इकाई-6 जॉन डीवी, माण्टेसरी एवं फ्रोबेल

इकाई-7 स्वामी विवेकानन्द एवं श्री अरविन्द घोष

इकाई-8 रवीन्द्र नाथ टैगोर एवं महात्मा गाँधी

खण्ड 3- दार्शनिक दृष्टिकोण से शैक्षिक समस्याएँ

इकाई-9 शिक्षा में व्यक्ति एवं समाज

इकाई-10 धर्म और शिक्षा

इकाई-11 शैक्षिक मूल्य

इकाई-12 स्वतंत्रता तथा अनुशासन

खण्ड 4- शिक्षा का सामाजिक आधार

इकाई-13 शिक्षा में समाजशास्त्र का योगदान तथा बालक का समाजीकरण

इकाई-14 संस्कृति और शिक्षा

इकाई-15 विद्यालय तथा समुदाय

इकाई-16 शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन

खण्ड परिचय - 3 दार्शनिक दृष्टिकोण से शैक्षिक समस्यायें

सामाजिक विकास में वैयक्तिक विकास निहित होता है। जब हम बच्चों में सामाजिक भावनाओं का विकास करते हैं तो निःसन्देह व्यक्ति में ऐसे गुण उत्पन्न करते हैं जिसके द्वारा वह अपने तथा अपने साथियों के वैयक्तिक विकास में सहायक होता है। इस इकाई में व्यक्ति एवं समाज का वर्णन किया गया है। इकाई 9 में छात्रों को शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य से परिचित करायेगी। इस इकाई के अन्त में शिक्षा में व्यक्ति एवं समाज में संयोग स्थापित करने के उपायों का वर्णन किया गया है।

इकाई 10 धर्म और शिक्षा से सम्बन्धित है। अति प्राचीन काल में ही शिक्षा में धर्म का स्थान प्रमुख रहा है। धर्म और शिक्षा को पृथक नहीं किया जा सकता है। इसका प्रमुख कारण दोनों का लक्ष्य समान है। धर्म के द्वारा व्यक्ति का जीवन गुण और आदर्शों से सुशोभित होता है और उसकी बुरी प्रवृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। यही लक्ष्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होती है। इस इकाई में धर्म का अर्थ एवं उनके कार्यों का वर्णन किया गया है । धर्म के अंग एवं हिन्दू धर्म पर भी प्रकाश डाला गया है। धर्म के साथ नैतिकता एवं शिक्षा की व्याख्या की गई है। धर्म निरपेक्ष भारत में धार्मिक शिक्षा के लक्ष्य, पाठ्य सामग्री एवं अध्यापक कैसे होने चाहिए? को स्पष्ट किया गया है और अन्त में धार्मिक शिक्षा के दोषों का भी उल्लेख किया गया है।

इकाई 11 में शैक्षिक मूल्य का वर्णन किया गया है। मूल्य ऐसी आचार संहिता या सदगुणों का समूह होता है। जिन्हें अपना कर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इस इकाई में मूल्य का अर्थ एवं ह्रास का वर्णन किया गया है। मूल्यों का प्रकार एवं श्रेणियाँ बताई गई हैं । इसी इकाई में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्णय एवं शिक्षा और मानव मूल्य का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह इकाई शिक्षार्थियों के मूल्यों के प्रति जागरूक करेगी।

स्वतंत्रता एवं अनुशासन में घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों एक सिक्के के दो पहलू के समान हैं। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर बेकार है तथा शरीर के बिना आत्मा का अस्तित्व प्रकट नहीं हो पाता, उसी प्रकार अनुशासन एवं स्वतन्त्रता भी एक दूसरे पर निर्भर है। इकाई 12 में व्यवस्था और अनुशासन का वर्णन एक विश्लेषण किया गया है और व्यवस्था एवं अनुशासन के अन्तर को स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् व्यवस्था के तीनों प्रकारों - निरोध, प्रभाव एवं मोक्षण की व्याख्या की गई है। अन्त में तीनों व्यवस्थाओं की समीक्षा की गई है।

इकाई 9 - शिक्षा में व्यक्ति एवं समाज

संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 सैद्धान्तिक भूमिका

9.4 शिक्षा का वैयाक्तिक उद्देश्य

9.5 शिक्षा के वैयाक्तिक उद्देश्य के पक्ष में तर्क

9.6 शिक्षा के वैयाक्तिक उद्देश्य के विपक्ष में तर्क

9.7 शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य

9.8 सामाजिक उद्देश्य के पक्ष में तर्क

9.9 सामाजिक उद्देश्य के विपक्ष में तर्क

9.10 शिक्षा में व्यक्ति और समाज का संयोग

9.11 सारांश

9.12 अभ्यास कार्य

9.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.1 प्रस्तावना

समाजिक विकास में वैयाक्तिक विकास निहित होता है । जब हम बच्चों में सामाजिक भावनाओं का विकास करते हैं, तो निःसन्देह व्यक्ति में ऐसे गुण उत्पन्न करते हैं, जिनके द्वारा वह अपने तथा अपने साथियों के वैयाक्तिक विकास में सहायक होता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समाज का सदस्य होता है, इसलिए समाज के विकास के लिए व्यक्तियों का विकास आवश्यक है। व्यक्ति का विकास निर्भर करता है समाज पर। अतः व्यक्ति के विकास के लिए समाज का विकास भी आवश्यक है। इस इकाई में व्यक्ति एवं समाज का वर्णन किया गया है। यह इकाई छात्रों को शिक्षा के सामाजिक एवं वैयाक्तिक उद्देश्य से परिचित करायेगी। इस इकाई के अन्त में शिक्षा में व्यक्ति एवं समाज में समन्वय स्थापित करने के उपायों का वर्णन किया गया है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि

- व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्धों की विवेचना कर सकेंगे ।
- शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य की व्याख्या कर सकेंगे ।
- शिक्षा में व्यक्ति एवं समाज का समन्वय स्थापित कर सकेंगे ।

9.3 सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि (Theoretical Backgrounds)

व्यक्ति और समाज में कौन बड़ा है, यह एक विवादास्पद विषय है । कुछ विद्वानों ने शिक्षा में व्यक्ति को तो कुछ ने समाज को अधिक महत्वपूर्ण माना है । शिक्षा में व्यक्ति को अधिक महत्व देने वाले विद्वानों ने कहा है कि व्यक्ति ने समाज की रचना अपने कल्याण के लिए की है, इसलिए समाज को व्यक्ति के विकास में सहायक होना चाहिए। जीव विज्ञानियों के अनुसार व्यक्ति एक निश्चित जैविक इकाई है तथा इसके दैहिक विकास की गति सबके लिए अद्वितीय है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी मानव व्यक्ति के रूप में ही विकास करता है। मनोविज्ञान से ज्ञात होता है कि व्यक्ति अपनी योग्यताओं और क्षमताओं में अद्वितीय होता है, उसके समान कोई दूसरा नहीं होता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति में वैयाक्तिक भिन्नता पायी जाती है। व्यक्ति की योग्यता की मात्रा एवं संख्या में भिन्नता होने के साथ-साथ अन्तर्निहित शक्तियों के विकास में भी भिन्नता होती है। इसके विपरीत कुछ विद्वान बिना समाज के व्यक्ति की कल्पना ही नहीं करते हैं। उनका कहना है कि समाज से अलग व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं होता, साथ ही व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास समाज में ही सम्भव है। इसीलिए इन विद्धानों ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व दिया है। शिक्षा में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को महत्व देने वाले चिन्तकों में राजनीतिज्ञ एवं विज्ञानी भी हैं। राजनीतिज्ञ अपने विचार का मुख्य विषय प्राय समाज को ही बनाते हैं और यह मानते हैं कि राज्य समाज के लिए जो की कल्याणकारी कार्य करता है, वह अन्ततः व्यक्ति के विकास में ही योग देता है। इसी कारण राजनेता किसी एक व्यक्ति को ध्यान में रखकर कोई कार्य नहीं करता बल्कि वह सम्पूर्ण समाज के हित को ध्यान में रखकर कार्य करता है। उनका कहना है कि व्यक्ति का विकास कर्त्तव्य बिना असम्भव है, इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह समाज के लिए अपने आपको न्यौछावर कर दें। इन विरोधी विचारधाराओं के कारण शिक्षा के क्षेत्र में भी विवाद है। कुछ विद्वान शिक्षा क द्वारा व्यकित के वैयाक्तिक विकास की बात करते हैं, तो कुछ विद्वान उसके सामाजिक विकास पर बल देते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

1. व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास कहाँ होता है?

....

....

....

....

2. राजनीतिज्ञों के अनुसार व्यक्ति का क्या कर्त्तव्य है ?

....

....

....

....

9.4 शिक्षा का वैयक्तिक उद्देश्य

कुछ विचारकों ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व दिया है और उन्होंने कहा है कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का वैयाक्तिक विकास करना होना चाहिए। शिक्षा के वैयाक्तिक उद्देश्य के सबसे बड़े समर्थक नन् महोदय माने जाते हैं । नन् के अनुसार वैयक्तिकता ही जीवन का आदर्श है। इस लिए प्रत्येक शिक्षा व्यवस्था द्वारा व्यक्ति को ''उच्चत्तम वैयाक्तिक श्रेष्ठता' प्रदान करनी चाहिए। कुछ विचारकों ने शिक्षा के वैयाक्तिक उद्देश्य को व्यक्तित्व तथा निजत्व का विकास भी कहा है।

विकास पर विचार करने पर पता चलता है कि भिन्न -भिन्न दर्शनों में वैयक्तिक विकास का अर्थ भिन्न-भिन्न लिया गया ।

आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा का अंतिम उद्देश्य व्यक्ति का आत्मानुभूति करने योग्य बनाना होना चाहिए। आत्मानुभूति का तात्पर्य आत्मज्ञान से है अर्थात् जैसा व्यक्ति उसे जानता है । दार्शनिक यूकेन महोदय के अनुसार वैयक्तिक का अर्थ

आध्यात्मिक व्यक्तित्व से ही लेना चाहिए।

प्रकृतिवादी वैयक्तिक विकास का भिन्न अर्थ लेते हैं। प्रकृतिवादी ये जानते है कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ मूल शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। रुसो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इन मूल शक्तियों के अनुसार विकास करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। प्रकृतिवादी व्यक्ति को भाव प्रकाशन की स्वतन्त्रता देते। इसे ही आज आत्माभिव्यक्ति के उद्देश्य के नाम से जाना जाता है। मनो विश्लेषणवादी भी आत्म प्रकाशन के महत्व को स्वीकार करते है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बच्चे की रूचि, रूझान एवं आवश्यकतानुसार उसका विकास करना होना चाहिए। शिक्षा जगत में इस प्रकार की बात सबसे पहले पेस्टालानी ने कही थी। आज तो प्रत्येक व्यक्ति इस सत्य को स्वीकार करता है। यह शिक्षा के वैयक्तिक विकास के उद्देश्य का ही एक रूप है।

वैयक्तिक विकास के उद्देश्य के पक्ष में जितने भी तर्क दिये जाते है, उन सभी का सम्बन्ध व्यक्ति की स्वतन्त्रता से सर्वाधिक है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता लोकतन्त्र का आधार है जिसके अभाव मे लोकतन्त्रीय जीवन पद्धति एवं शासन पद्धति सम्भव नहीं है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है और उसमें यह योग्यता है कि अपनी सामर्थ्यनुसार वह सामाजिक प्रगति में योगदान कर सके। वैयक्तिक विकास के उद्देश्य में व्यक्ति की स्वतन्त्रता का महत्व दिया जाता है। यह उद्देश्य व्यक्ति को आत्मानुभूति में मदद करता है। इसी उद्देश्य द्वारा आत्म प्रकाशन भी हो सकता है।

वैयक्तिक विकास के उद्देश्य में अनेक गुण होते हुये भी कुछ कमियां है । यह उद्देश्य व्यक्तिवाद को बढ़ावा देता है और समाज को विघटित करता है। वातावरण की उपेक्षा करता है और व्यक्ति की सामाजिक दर्शन के दृष्टिकोण की भी उपेक्षा करता है, जैसा कि रास महोदय ने कहा है कि 'उस मामाजिक वातावरण से अलग वैयाक्तिकता, मूल्यहीन एवं व्यक्तित्व निरर्थक पद है, जिसमें इनका विकास होता है और जहाँ इन्हे प्रभावशाली बनाया जाता है ।

9.5 वैयक्तिक उद्देश्य के पक्ष में तर्क

प्रत्येक दृष्टिकोण की कुछ विशेषताएं एवं कुछ विषमताएं होती है, जिसे शिक्षा शास्त्री अपने अनुसार परिभाषित करते है। शिक्षा क वैयाक्तिक उद्देश्य के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिया जा सकता है-

1. प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजत्व होता है इसी कारण वह दूसरों से भिन्न होता है। इसलिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति के निजत्व का विकास किया जाना चाहिए।

2. मनोविज्ञान ने यह सिद्ध किया है कि व्यक्तियों में वैयक्तिक भिन्नता होती है। यह भिन्नता उनकी रूचि, वृद्धि, संवेग आदि में पायी जाती है। इसलिए प्रत्येक बालक को उसकी रूचि, बुद्धि एवं संवेग आदि के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए।

3. व्यक्ति के विकास से समाज का विकास होता है। इसीलिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किया जाना चाहिए।

4. व्यक्ति की स्वतन्त्रता का दमन करने से व्यक्ति विद्रोह करता है। इसलिए व्यक्ति की स्वतन्त्रता का दमन न करके उसको आत्म अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए।

5. बालक के स्वतन्त्र विकास के अवसर न उपलब्ध होने पर उनमें विभिन्न प्रकार की मानसिक ग्रन्थियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, हीनता की भावना पैदा हो जाती है, और इस कारण उसका व्यवहार असामाजिक हो जाता है। इसलिए शिक्षा द्वारा बालक को अपना स्वतन्त्र विकास करने का अक्सर दिया जाना चाहिए।

6. प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में व्यक्ति का महत्व स्वीकार कर उसे अपने व्यक्तित्व विकास का अवसर दिया जाता है। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का वैयक्तिक विकास होना चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड के शिक्षा बोर्ड ने वैयक्तिक उद्देश्य का समर्थन किया और कहा कि 'प्रत्येक विद्यालय अपना उद्देश्य उस सीमा तक पूर्ण करते हैं, जिस सीमा तक वे वैयाक्तिता की स्वतन्त्र विकास के लिए अवसर प्रदान करते हैं और प्रत्येक बालक एवं बालिका को अधिक से अधिक वैयक्तिक विकास करने में सामाजिक जीवन द्वारा सहायता करते हैं ।'

9.6 वैयक्तिक उद्देश्य के विपक्ष में तर्क

शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य के विपक्ष में निम्ननिलिखित तर्क दिये जा सकते हैंः

1. शिक्षा का वैयाक्तिक उद्देश्य व्यक्तिवाद का समर्थक होने के कारण समाजवाद का विरोध करता है, और व्यक्ति के वैयाक्तिक विकास हेतु सभी प्राकार की स्वतन्त्रता देने की बात करता है।

2. शिक्षा के वैयक्तिगत उद्देश्य से व्यक्ति का महत्व बढ़ता है, और समाज का महत्व कम होता है। व्यक्ति को अधिक महत्व देना समाज के लिए अहितकर है, क्योंकि इससे व्यक्ति में अहंकार की भावना आती है और वह सामज विरोधी कार्य करने में डरता नहीं है।

3. व्यक्ति एक समाजिक प्राणी है। वह अपने व्यक्तित्व का विकास समाज में

ही करता है। इसलिए सामाजिक विकास के बिना वैयक्तिक विकास की बात करना बेकार है।

4. वैयाक्तिक विकास का उद्देश्य वैयात्तिकता को इतना अधिक बढ़ावा देता है कि उससे व्यक्ति स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द व्यवहार की ओर अग्रसर हो जाता है तथा समाज विरोधी कार्य में सम्मिलित हो जाता है।

5. शिक्षा के वैयाक्तिक उद्देश्य से बालको में सामाजिकता की भावना का विकास नही हो पाता है।इस कारण वह स्वार्थी हो जाता है।

6. शिक्षा का वैयाक्तिक उद्देश्य बहुत अव्यवाहारिक है, क्योंकि वैयाक्तिक भिन्नताओं के अनुसार सभी बालकों के लिए शिक्षा की व्यवस्था, पाठ्यक्रम का निर्माण तथा शिक्षकों की नियुक्ति करना बहुत कठिन है।

शिक्षा के वैयाक्तिक उद्देश्य के पक्ष एवं विपक्ष के तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि वैयात्तिक विकास की दृष्टि से यह उद्देश्य उत्तम है। चूँकि यह उद्देश्य समाज की अवेहना करता है इस लिए वैयाक्तिक उद्देश्य को एक मात्र उद्देश्य नहीं माना जा सकता है। यह उद्देश्य अपूर्ण एवं एकाकी है, क्योंकि व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। समाज के बगैर व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है, यह परम सत्य है। इस सम्बन्ध में रास का कथन है कि 'सामाजिक वातावरण से अलग वैयात्तिकता का कोई मूल्य नही है, और व्यक्तित्व का कोई अर्थ नहीं।'

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

3 वैयक्तिक विकास के उद्देश्य को किस दूसरे नाम से जाना जाता है ?

....

....

....

4. वैयक्तिक विकास के उद्देश्य में किस बात को महत्व दिया जाता है ?

....

....

....

5.वैयक्तिक विकास के उद्देश्य की तीन कामियाँ बताइये ।

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

9.7 शिक्षा का समाजिक उद्देश्य (Social Aim of Education)

व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देने वालों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक भावना का विकास करना होना चाहिए। यही शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य है। विद्वानों ने सामाजिक उद्देश्यय की सीमाएं अपने-अपने दृष्टिकोण से निश्चित की है-

आदर्शवादियों का मानना है कि सभी प्राणियों में एक समान तत्व आत्मा है। इस दृष्टिकोण से सारा संसार एक कुटुम्ब है औंर सभी प्राणी इसके सदस्य हैं। अपने सुखमय जीवन और ईश्वर की प्राप्ति के लिए हमें एक दूसरे से प्रेम करना चाहिए। अतः शिक्षा को व्यक्तियों के अन्दर प्रेम की भावना का विकास करना चाहिए, जिससे वे एक दूसरे की सेवा करते हुए ईश्वर की ओर उन्मुख हों। आदर्शवादी शिक्षा के सामाजिक विकास के उद्देश्य से यही अर्थ लेते हैं।

मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य मे सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति होती है। इसी प्रवृत्ति के कारण वह समूह में रहता है। अपनी जाति के प्राणियों के प्रति प्रेम, सहयोग, सहानुभूति, दया, क्षमा, सहनशीलता आदि की भावना रखना ही सामाजिकता है। इन्हीं गुणों का विकास सामाजिकता का विकास है। यर्थाथवादी शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को इसी रुप में लेते हैं। प्रो. बागले एवं जान डीवी ने सामाजिक उद्देश्य का अर्थ एक दूसरे प्रकार से किया है। उनके अनुसार सामाजिक उद्देश्य का तात्पर्य सामाजिक दक्षता से है। सामाजिक उद्देश्य का तात्पर्य यह है कि व्यक्तियों के बीच में सहयोग एवं सामाजिक भावना का विकास किया जाय। रेमण्ड का कथन समाजविहीन व्यक्ति कल्पना की खोज है।' का तात्पर्य इसी सामाजिक भावना को प्रमुखता देने से है। जान डीवी द्वारा प्रतिपादित सामाजिक दक्षता, सामाजिक उद्देश्य का सरल एवं उदार दृष्टिकोण है। डीवी ने सामाजिक दक्षता के अन्तर्गत नागरिकता सम्बन्धी दक्षता एवं व्यावसायिक दक्षता को शामिल किया है। डीवी ने बल दिया है कि विद्यालय का आदर्श इन्हीं दोनों प्रकार की दक्षताओं की प्राप्ति होना चाहिए।

सामाजिक उद्देश्य के पक्ष में अनेक तर्क दिये जा सकते हैं । समाज व्यक्ति का आधारभूत तत्व है यही एक ऐसी स्थिति है, जो मनुष्य को पशुओं से पृथक करती है। समाज विहीन व्यक्ति कोरी कल्पना है, व्यक्ति समाज में ही उत्पन्न होता है, समाज में ही उसका पालन-पोषण होता है, वह समाज में रहकर ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। समाज ही व्यक्ति को सभ्य बनाता है और उसे नागरिकता का पाठ पढ़ाता है। समाज व्यक्ति को इस प्रकार के अवसर प्रदान करता है कि व्यक्ति आत्म प्रकाशन कर सके तथा अपने विचारों का आदान प्रदान कर सके। मानव जीवन की समस्त क्रियाएं समाज का आधार लेकर ही होती हैं। समाज के अभाव में व्यक्ति का अस्तित्व भी कठिन होगा।

शिक्षा में सामाजिक उद्देश्य पर आवश्यकता से अधिक बल देने पर लाभ के स्थान पर हानियाँ होने लगती हैं, इसलिए बहुत से विद्वान इसके पक्ष में नहीं हैं। इस हेतु निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं- सामाजिक उद्देश्य प्रायः अमनोवैज्ञानिक होता है, यह व्यक्ति की रुचियों, योग्यताओं, अभिवृत्तियों एवं अभियोग्यताओं की उपेक्षा करता है। सामाजिक उद्देश्य सबकों समान रूप से समाज का साधन मानकर व्यक्तिगत भेद को तिरस्कृत करता है। यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दमन करता है। यह संकुचित राष्ट्रीयता का विकास करता है। यह स्वयं व्यक्तियों से ही निर्मित है, किन्तु व्यक्तियों की ही उपेक्षा करता है। अतः सामाजिक उद्देश्य को एकांगी कहा जाता है।

सामाजिक उद्देश्य के पक्ष में तर्कः- शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिया जा सकता है-

1. शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य बहुत व्यापक उद्देश्य है। इससे व्यक्ति अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करके सामाजिक कल्याण के प्रति उन्मुख होता है।

2. व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होता है । व्यक्ति की समस्त शक्तियों एवं गुणों का विकास समाज में ही होता है। समाज के हित मे ही व्यक्ति का हित निहित होता है।

3. सामाजिक कुशलता से व्यक्ति के व्यक्तित्व में निखार आता है, यह व्यक्ति को मर्यादित करती है और व्यक्ति के दुष्प्रवृत्तियों एवं बुरे विचारों पर अंकुश लगाती है।

4. व्यक्ति के जन्मजात प्रवृत्तियों का शोधन एवं मार्गान्तीकरण समाज में ही होता है। अच्छे सामाजिक परिवेश के बिना व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नही कर सकता है। इस दृष्टि से शिक्षा का समाजिक उद्देश्य अत्याधिक महत्वपूर्ण हो जाता

है।

5. व्यक्तियों में प्रेम सहयोग, सहकारिता एंव बधुत्व जैसे गुणों का विकास करेन के लिए शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को महत्व दिया जाना चाहिए तभी समाज का हित एवं कल्याण हो सकता है।

6. व्यक्ति की सभ्यता एवं संस्कृति का जन्म, सरंक्षण एवं पोषण समाज में ही होता है, भावी पीढ़ी को इसका पूर्ण ज्ञान हो, इस दृष्टि से शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य बहुत महत्वूपर्ण है।

7. व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास के लिए समाजिक विकास आवश्यक है और सामाजिक विकास सामाजिक उद्देश्य से होता है। इस सम्बन्ध में बाल्डविन ने कहा है कि 'व्यक्तित्व को सामाजिक शब्दों के अतिरिक्त और किसी प्रकार व्यक्त नहीं किया जा सकता है।'

8. किसी भी राष्ट्र की सफलता उसके नागरिकों पर निर्भर करती है, इसलिए व्यक्तियों में आदर्श नागरिकता, समाज सेवा एवं देश प्रेम की भावना का विकास करने के लिए शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को महत्व किया जाना चाहिए।

9.9 सामाजिक उद्देश्य के विपक्ष में तर्कः- शिक्षा के समाजिक उद्देश्य के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिया जा सकता है :

1. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के कारण व्यक्ति का चिन्तन क्षेत्र संकुचित हो जाता है। इससे उसके स्वतन्त्र चिन्तन करने की क्षमता, अभिव्यक्ति एवं कार्य करने की योग्यता विकसित नही हो पाती, फलतः वह अपने सीमित क्षेत्र में विकसित होता है।

2. शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य व्यक्ति के सामाजिक विकास पर अधिक बल देता है, इससे व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता इस लिए यह उद्देश्य एकपक्षीय एवं एकांगी है।

3. शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य बालक की वैयक्तिक भिन्नताओं अर्थात् उनकी रुचियों, क्षमताओं तथा योग्यताओं आदि पर ध्यान न देकर सभी को एक प्राकार की शिक्षा देती है जो मनोविज्ञान के अनुसार ठीक नहीं है।

4. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य में व्यक्ति के सामाजिक विकास को अधिक महत्व दिया जाता है। इस कारण इसके मानसिक, चारित्रिक, संवेगात्मक एवं आध्यात्मिक विकास की उपेक्षा होती है।

5. इस उद्देश्य से बालकों में अपने समाज एवं राष्ट्र को ही सर्वश्रेष्ठ मानने की भावना विकसित होती है। इस प्रकार की भावना संकुचित राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न

करती है। इससे उनमें अन्तर्राष्ट्रीय भावना विकसित करने में समस्या उत्पन्न होती है।

6. समाज के विकास के लिए व्यक्ति का विकास आवश्यक होता है। किसी भी व्यक्ति में सामाजिक कुशलता के लिए उसकी वैयाक्तिकता का विकास आवश्यक है। इसलिए शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य अधूरा है।

7. सामाजिक कुशलता की भावना व्यक्ति को अर्थोपार्जन के योग्य बनाती है, जिससे व्यक्ति की वुद्धि व्यवासायिक हो जाती है। इससे इसका ध्यान सिर्फ व्यवसाय की ओर लगा रहता है। फलतः व्यक्ति के नैतिक एवं जीवन मूल्यों की उपेक्षा होती है।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य के पक्ष एवं विपक्ष के तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक उद्देश्य में अनेकों विशेषताओं के साथ कुछ दोष भी हैं। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ बालक का सामाजिक विकास नहीं हो सकता। सामाजिक उद्देश्य के साथ-साथ वैयाक्तिक उद्देश्य को भी महत्व दिया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

6 समाजिक उद्देश्य का क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

7. सामाजिक उद्देश्य के तीन दोष बताइये ?

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

9.10 शिक्षा में व्यक्ति एवं समाज का संयोग (समन्वय)

शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य पर विचार करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि अपने उग्ररुप में इनमे से कोई भी उद्देश्य मान्य नहीं हो सकता। व्यक्ति के आगे समाज और समाज के आगे व्यक्ति को नहीं भुलाया जा सकता है। इसलिए शिक्षा का उपयुक्त उद्देश्य वही होगा, जो व्यक्ति और समाज दोनों के विकास पर समान रूप से

बल दे। इसलिए इन दोनों उद्देश्यों में समन्वय की आवश्यकता है।

वैयक्तिक उद्देश्य व्यक्ति के वैयक्तिक विकास पर बल देता है, पर वैयक्तिक विकास कैसे होगा? अरस्तु का कथन है कि 'व्यक्ति सामाजिक प्राणी है।' व्यक्ति जो कुछ सीखता है, वह समाज में रहकर ही सीखता है, समाज के अभाव में वह कुछ नहीं सीख सकता। यदि इस बात पर विचार करे कि समाज व्यक्ति के वैयक्तिक विकास में कब और कैसे सहायक हो सकता है? तो उत्तर स्पष्ट है कि जब व्यक्ति अपने आपको समाज के लिए और समाज अपने को व्यक्ति के लिए तैयार कर ले। यही समाजिक भावना है । इससे स्पष्ट है कि बिना सामाजिक विकास के वैयक्तिक विकास हो ही नहीं सकता।

समाजिक विकास में वैयक्तिक विकास निहित होता है। जब हम बच्चो में सामूहिक भावना का विकास करते हैं, तो निःसन्देह, व्यक्ति में ऐसे गुण उत्पन्न करते हैं, जिनके द्वारा वह अपने तथा अपने साथियों के वैयक्तिक विकास में सहायक होता है। व्यक्ति को अपना वैयाक्तिक विकास उसी सीमा तक करने दिया जा सकता है, जिस सीमा तक इससे उसका और समाज दोनों का भला होता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समाज का सदस्य होता है, इसीलिए समाज के विकास के लिए व्यक्तियों का विकास आवश्यक है, और व्यक्ति का विकास निर्भर करता है, समाज पर। अतः व्यक्ति के विकास के लिए समाज का विकास भी आवश्यक है।

व्यक्ति एवं समाज में उचित समन्वय हेतु एक आदर्श राष्ट्र की आवधारणा आवश्यक है। जहाँ व्यक्ति एवं समाज एक सूत्र में बंधे हो, जहाँ एक का उद्देश्य दूसरे के उद्देश्य में बाधक न हो, जहाँ दोनों ही एक -दूसरे को लाभ देने का प्रयास करते हो। ऐसा समाज व्यक्ति का विरोधी न होकर उसके विकास में सहायक होता है। जैसा कि नन महोदय ने कहा है कि व्यक्ति एवं समाज एक दूसरे के पूरक होते हैं ।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

8. व्यक्ति एवं समाज में समन्वय क्यों आवश्यक है?

....

....

9. समाज व्यक्ति के विकास में कब और कैसे सहायक हो सकता है?

....

....

10. व्यक्ति एवं समाज में उचित समन्वय स्थापित करने हेतु तीन उपाय बताइये।

....

....

9.11 सारांश

इस इकाई में व्यक्ति एवं समाज के सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया गया और व्यक्ति एवं समाज के महत्व को बताया गया इसके बाद शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य का वर्णन किया गया है और इसके पक्ष में तर्क दिया गया कि यही एक ऐसी स्थिति है, जो व्यक्ति को पशुओं से पृथक करती है। समाजविहीन व्यक्ति कोरी कल्पना है। समाजिक उद्देश्य के साथ ही शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य को भी स्पष्ट किया गया है। यह उद्देश्य व्यक्ति को आत्मनुभूति मे मदद करता है, जिससे उसका आत्म प्रकाशन होता है। अन्त में इस इकाई में व्यक्ति एवं समाज के समन्वय की व्याख्या की गयी है और बताया गया है कि यदि व्यक्ति एवं समाज एक सूत्र मे बँधे हों, एक का उद्देश्य दूसरे के उद्देश्य में बाधक न हो तथा दोनों एक दूसरे को लाभ देने का प्रयास करते हों, तो व्यक्ति एवं सामाज में संयोग स्थापित किया जा सकता है।

9.12 अभ्यास कार्य

1. व्यक्ति एवं समाज की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि की विवेचना कीजिए।

2. शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

3. शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य का वर्णन कीजिए।

4. क्या आप महसूस करते हैं कि व्यक्ति एवं समाज में समन्वय स्थापित हो सकता है? यदि हाँ तो कैसे? और यदि नहीं तो क्यों नहीं?

9.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समाज में

2. राजनीतिज्ञो का विचार है कि व्यक्ति का विकास समाज के बिना असम्भव है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह समाज के लिए अपने आपकों

न्योछावर कर दें ।

3. व्यक्तित्व तथा निजत्व का विकास

4. व्यक्ति की स्वतन्त्रता को

5. (क) यह व्यक्तिवाद के बढ़ावा देता है, और समाज को विघटित करता है।

(ख) यह व्यक्ति की सामाजिक प्रकृति की अवेहना करता है।

(ग) यह सामाजिक दर्शन के दृष्टिकोण की उपेक्षा करता है।

6. सामाजिक उद्देश्य का तात्पर्य व्यक्तियों के बीच में सहयोग एवं सामाजिक भावना का विकास करना है।

7. (क) यह अमनोवैज्ञानिक होता है।

(ख) यह व्यक्ति की रुचियों, योग्यताओं, अभिवृत्तियों एवं अभियोग्यताओं की उपेक्षा करता है।

(ग) यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दमन करता है।

8. व्यक्ति के आगे समाज और समाज के आगे व्यक्ति को नही भुलाया जा सकता, इसीलिए व्यक्ति एवं समाज में समन्वय आवश्यक है।

9. जब व्यक्ति अपने आपको समाज के लिए और समाज अपने को व्यक्ति के लिए तैयार करलें।

10 (क) व्यक्ति एवं समाज एक सूत्र में बंधे हो ।

(ख) व्यक्ति एवं समाज के उद्देश्य एक दूसरे के बाधक न हो।

(ग) व्यक्ति एवं समाज एक दूसरे को लाभ देने का प्रयास करें ।

इकाई 10 - धर्म और शिक्षा

संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 धर्म का अर्थ

10.4 धर्म के कार्य

10.4.1 आध्यात्मिक विकास

10.4.2 ईश्वरीय गुणों का विकास

10.4.3 भावनाओं का उदात्तीकरण

10.4.4 सामाजिक पक्ष

10.5 धर्म के अंग

10.6 हिन्दू धर्म

10.7 धर्म एवं नैतिकता में सम्बन्ध

10.8 धर्म एवं शिक्षा में सम्बन्ध

10.9 शिक्षा में धर्म का स्थान

10.10 धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व

10.11 धर्म निरपेक्ष भारत और धार्मिक शिक्षा

10.11.1 धार्मिक शिक्षा के लक्ष्य

10.11.2 धार्मिक शिक्षा तथा अध्यापक का उत्तरदायित्व

10.11.3 धार्मिक शिक्षा तथा पाठ्य सामग्री

10.12धार्मिक शिक्षा के अवगुण

10.13 सारांश

10.14 अभ्यास कार्य

10.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.1 प्रस्तावना

अति प्राचीन काल से ही धर्म का स्थान शिक्षा में प्रमुख रहा है। जीवन शिक्षा और धर्म तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध रहा हे। शिक्षा का अतीत यही बताता है कि

प्राचीन काल के शिक्षक धार्मिक संस्थाओं से जुड़े रहते थे और शिक्षा भी धर्म से सम्बन्धित नियमों और तत्वों को जानने में प्रयासरत थी। मध्यकाल में धार्मिक संस्थाए जैसे मन्दिर, मस्जिद, चर्च विद्यालय के रूप में कार्य करते थे। वर्तमान समय में भी धार्मिक संस्थान आर्थिक सहायता शिक्षा संस्थानों को उपलब्ध कराती हैं। लेकिन शिक्षण कार्य प्राचीन काल से सम्बन्धित नहीं है। इस सबके परिणाम स्वरूप वर्तमान समय में लोगों का विचार धर्म निरपेक्ष हो रहा है। विज्ञान एवं भौतिकता ने लोगों के विश्वास में परिवर्तन ला दिया है, इसके बावजूद शिक्षाशास्त्री शिक्षा में धर्म की आवश्यकता महसूस करते हैं। अतः वर्तमान समय में शिक्षा द्वारा धर्म का ज्ञान कराना एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है।

धर्म और शिक्षा को अलग नहीं किया जा सकता है। इसका प्रमुख कारण दोनों का लक्ष्य समान है। धर्म के द्वारा व्यक्ति का जीवन, गुण और आदर्शों से सुशोभित होता है और उसकी बुरी प्रवृतियाँ नष्ट हो जाती हैं। यही लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहायक होती है। इस इकाई में धर्म का अर्थ एवं उनके कार्यों का वर्णन किया गया है। धर्म के अंग एवं हिन्दू धर्म पर भी प्रकाश डाला गया है।धर्म के साथ नैतिकता एवं शिक्षा के सम्बन्धों की व्याख्या की गयी। धर्म निरपेक्ष भारत में धार्मिक शिक्षा के लक्ष्य, पाठ्य सामग्री ण्वं अध्यापक कैसे होने चाहिए यह भी स्पष्ट किया गया है और अन्त में धार्मिक शिक्षा के दोषों का भी उललेख किया गया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि -

- धर्म का अर्थ एवं कार्य बता सकेंगे।
- धर्म के अंग एवं हिन्दू धर्म के विषय में बता सकेंगे।
- धर्म एवं नैतिकता में सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे।
- धर्म एवं शिक्षा के सम्बन्ध की विवेचना कर सकेंगे।
- धर्म निरपेक्ष भारत में धार्मिक शिक्षा कैसी हो इसका निर्धारण कर सकेंगे।
- धार्मिक शिक्षा के दोष बता सकेंगे।

10.3 धर्म का अर्थ - (Meaning of Religion)

मानव जीवन के मुख्य रूप से तीन पक्ष होते हैं। प्राकृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक। उसने अपने इन तीनों पक्षों के विकास के लिये अपने अनुभवों के आधार पर कुछ सिद्धान्त एवं नियम निश्चित किये हैं। सामान्यत आध्यात्मिक पक्ष के

सिद्धान्तों एवं नियमों के पालन को धर्म कहते हैं। धर्म शब्द का अर्थ लोग विभिन्न प्रकार से लगाते हैं। कुछ लोग धर्म को पूजा, पाठ, कथा, व्रत, उपवास, प्रार्थना समाज आदि तक ही सीमित मानते हैं। इनके अनुसार ये क्रियाएँ ही धर्म हैं। ये लोग चन्दन, चोटी, जनेऊ, टाई, तुर्की टोपी, दाढ़ी आदि को धार्मिक व्यक्ति का लक्षण मानते हैं। किन्तु ये सब धर्म के बाह्य रूप से सम्बन्धित होते हैं। धर्म शब्द की व्याख्या करते ही उसका सही अर्थ प्राप्त होता है।

धर्म शब्द संस्कृत की 'घृ' धातु से बना है। जिसका अर्थ है धारण करना। अतः धर्म का अर्थ है - जो धर्म सत्ता से सम्बद्ध हो जाता है। और मानवता, मनुष्यता आदि बातों का बोध कराते हुए कर्त्तव्य का अर्थ देने लगता है। धर्म को अग्रेजी में 'रिलीजन' कहा जाता है, परन्तु 'रिलीजन' शब्द धर्म का प्रतीक नहीं है। धर्म शब्द बहुत व्यापक शब्द है और यह मन या सम्प्रदाय जैसा संकुचित शब्द नहीं है क्योंकि मत या सम्प्रदाय शब्द एक सीमित एवं निश्चित विचारधारा होती है और उसकी अपनी कुछ विशेषताएं। मत या सम्प्रदाय के अपने नियम, अपने ग्रंथ एवं अपने प्रवर्तक होते हैं। जब कि धर्म मानवता से सम्बन्धित होता है और मत या सम्प्रदाय से ऊपर होता है। मत या सम्प्रदाय की श्रेणी में आने वाली कुछ विचारधाराएं निम्न पंथों से सम्बन्धित है- नानक पंथ, राधास्वामी, जैन, बौद्ध, इस्लाम एवं ईसाई आदि। यहाँ धर्म का आशय विभिन्न प्रकार के भेदों एवं विभिन्नताओं से न होकर एकता एवं कर्त्तव्य से है। विद्वानों के अनुसार मनुष्य का मनुष्य के प्रति कर्त्तव्य का दुसरा नाम ही धर्म है। इस दृष्टि से धर्म एवं कर्त्तव्य में कोई अन्तर नहीं होता। आध्यात्मिक दृष्टि से दूसरों की सेवा करना धर्म होता है। और सामाजिक दृष्टि से कर्त्तव्य।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

1. धर्म का क्या अर्थ है।

....

....

10.4 धर्म के कार्य

धर्म के निम्नलिखित कार्य बताये जा सकते हैं —

10.4.1 अध्यामिक विकास

धर्म व्यक्ति की आध्यात्मिकता से सम्बन्धित होता है। व्यक्ति सुख की खोज में इधर-उधर भटकता रहा है। सुख एवं आनन्द एक प्रकार की अनुभूति है, जिसकी प्राप्ति आध्यामिकता के बगैर हो ही नहीं सकती। इसलिए व्यक्ति सुख की खोज में धर्म का सहारा लेकर आध्यात्मिकता के मार्ग पर चल देता है। व्यक्ति की पूर्णता का आधार आध्यात्मिकता होती है। व्यक्ति पूर्णता की आकांक्षा करता है इस ओर उन्मुक्त होता है। व्यक्ति की पूर्णता प्राप्ति होने तक उसकी इच्छा अतृप्त रहती है,इसी को दूर करने के लिये वह सभी प्राणियों से प्रेम एवं भक्ति की भावना रखता है। इसलिये धर्म को व्यक्ति की आध्यात्मिक मार्ग का पथ प्रदर्शक कहा जाता है।

10.4.2 ईश्वरीय गुणों का विकास

धर्म के संकुचित एवं व्यापक अर्थ में इस बात पर बल दिया जाता है कि व्यक्ति परमात्मा (ईश्वर) में विश्वास करे, जो शक्तिशाली होता है। व्यक्ति ईश्वर पर विश्वास करके ही अपने को ईश्वर से जोड़ता है। इस प्रकार धर्म व्यक्ति एवं परमात्मा (ईश्वर) के बीच संबन्ध स्थापित करता है और उसमें ईश्वरीय गुणों का विकास करता है। व्यक्तियों में ईश्वरीय गुणों का विकास तभी हो सकता है जब काफी अच्छाइयों को अपनायें एवं बुराईयों को त्यागे। धर्म व्यक्ति को बुराईयाँ त्यागने एवं अच्छाईयों को अपनाने की प्ररणा देता है।

10.4.3 भावनाओं का उदात्तीकरण

धर्म व्यक्ति की भावनाओं का उदात्तीकरण करता है। इसी कारण जो व्यक्ति धार्मिक होता है वह ईश्वर को सर्वत्र विद्यमान मानता है। धार्मिक व्यक्ति की यह मान्यता होती है कि इस दुनिया को व्यक्ति /मनुष्य नहीं ईश्वर चला रहा है। उसके अनुसार ईश्वर कण-कण में विद्यमान है। वही पालनहार है यही विचार व्यक्ति में ईश्वर के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा उत्पन्न करता है। यह प्रेम एवं श्रद्धा व्यक्ति को आनन्द प्रदान करता है इस प्रकार कहा जा सकता है कि धर्म व्यक्ति के जीवन को आनन्दित करने का सशक्त माध्यम है।

10.4.4 सामाजिक पक्षः कुछ लोग धर्म के सामाजिक पक्ष को अधिक महत्व देते हैं और यह मानते हैं कि धर्म सामाजिक सम्बन्ध एवं सास्कृतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ती का साधन है। इसी कारण समाज सेवा जैसे कार्यों को एक धार्मिक कार्य माना जाता है। दीन-दुखियों, गरीबों तथा असहाय लोगों के रूप में ईश्वर की कल्पना की जाती है, सम्पूर्ण मानव समाज को भाई-भाई माना जाता है। इस प्रकार धर्म द्वारा मानव समाज एवं विश्व व्यापी मानव समाज को बढ़ावा मिलता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

2. धर्म के तीन कार्य बताईये।

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

10.5 धर्म के अंग

हमारे देश में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की रूपरेखा क्या हो? इस पर विचार करने के लिये सन 1959 में भारत सरकार ने एक समिति की नियुक्ति की जिसके अध्यक्ष श्री प्रकाश जी थे। श्री प्रकश समिति ने अपने प्रतिवेदन के छठवे अनुच्छेद में धर्म के नियम में लिखा है कि घर्म का अर्थ एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से सम्बन्ध स्थापित करना' और सातवें अनुच्छेद में धर्म को बांटा है। समिति ने कहा कि धर्म को चार भागों में बांटा जा सकता है।

1. **धर्म प्रवर्तक का व्यक्तित्वः** - धर्म के इस भाग में धर्म के प्रवर्तक की पवित्रता एवं महानता की व्याख्या की जाती है एवं धर्म प्रवर्तक पर श्रद्धा रहती है।

2. **उद्‌गमः** - प्रत्येक धर्म इस संसार के उद्‌गम (प्रारम्भ) के विषय में बताता है कि उसका प्रारम्भ कब और कैसे हुआ।

3. **धार्मिक कार्यः** - जन्म, मृत्यु विवाह, उत्सव एवं पर्व आदि के समय कौन से कार्य करने चाहिए और कौन से कार्य नहीं करने चाहिए इस बात का निर्धारण प्रत्येक धर्म करता है।

4. **नैतिक संहिताः** - प्रत्येक धर्म अच्छाई-बुराई एवं पाप-पुण्य के बारे में कुछ सिद्धान्त बताता है जिनका पालन करना आवश्यक माना जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

3. सन 1969 में धार्मिक शिक्षा पर गठित समिति के अध्यक्ष कौन थे?

....

....

4. श्री प्रकाश समिति अपने प्रतिवेदन में धर्म का क्या अर्थ बताया है?

....

....

5. धर्म को कितने भागों मं बाटा गया है?

....

....

10.6 - हिन्दू धर्म

धर्म के चारों अंग (धर्म प्रवर्तक का व्यक्तित्व उदगम, धार्मिक कार्य एवं नैतिक संहिता।) वस्तुत मत एवं सम्प्रदाय के भी अंग होते हैं। श्री प्रकाश समिति ने भी इस बात को स्वीकार किया है। श्री प्रकाश समिति ने अपने प्रतिवेदन के आठवें अनुच्छेद में लिखा है कि 'यद्यापि' ये चारों अंग समान्य रूप से सभी धर्मो के लिये उपयुक्त है फिर भी भारत के बहुसंख्यक लोगों का धर्म, हिन्दू धर्म में धर्म के उपयुक्त चारों अंग फिट नहीं बैठते। यद्यपि हिन्दुत्व को धर्म माना जाता है, किन्तु हिन्दुत्व एक प्रकार से धर्म नहीं है। हिन्दू शब्द हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थों एवं अन्य पुराने साहित्यों में नहीं मिलता। प्राचीन ग्रन्थों की भाषा संस्कृत में रिलीजन शब्द का अनुवाद करना मुश्किल है। रिलीजन का पर्याय धर्म का अर्थ कर्त्तव्य, संस्कार, परम्परा, आचार-संहिता नियम आदि विभिन्न रूपों में लगाया जाता है।

हिन्दू शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम यूनानियों ने किया तत्पश्चात तुर्क, अरबी एवं पारसियों ने हिन्दू शब्द का प्रयोग किया। मुस्लिम धर्म में भारत के मुसलमानों को भी 'हिन्दु-मुस्लिम' कहाँ जाता है। विभिन्न यूरोपी भाषाओं में हिन्दु शब्द का प्रयोग भारत के लोगों के लिये किया जाता है। न कि सिर्फ बहुसंख्यक लोगों के लिये।

श्री प्रकाश समिति ने अपने प्रतिवेदन के नवें अनुच्छेद में हिन्दूओं के विचार एवं विश्वास को वैदिक धर्म, आर्य धर्म, मानव धर्म, सनातन धर्म एवं वर्णाश्रम धर्म के रूप में विश्लेषण एवं व्याख्या की है।

मनु स्मृति में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं जो निम्न हैं

धृति : क्षमा दमोस्तेयं शौचभिन्द्रिय निग्रह।

धीर्विघा सत्यमक्रोधो दशक धर्म लक्षणम्।

अर्थात् धैर्य, क्षमा शान्ति, लाभ न करना, शुद्धता, इन्द्रिय-निग्रह बुद्धि, विद्या सत्य एवं अक्रोध - ये धर्म के दस लक्षण है। यदि ध्यान पूर्वक देखा एवं समझा जाए तो स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त दस लक्षणों को धारण करने वाले व्यक्ति का शुभ (शारीरिक एवं मानसिक विकास), मंगल (सामाजिक विकास एवं प्रतिष्ठा) तथा कल्याण (आध्यात्मिक विकास एवं मुक्ति) तीनों निश्चित है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

6. हिन्दू शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किस देश के लोगों ने किया?

....

....

7. मनुस्मृति में बताये गये धर्म के तीन लक्षण बताइये।

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

10.7 धर्म एवं नैतिकता का सम्बन्ध

मनुष्य जीवन के मुख्य रूप से तीन पक्ष हैं प्राकृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक। मनुष्य के इन तीनों पक्षों के विकास के लिये प्रत्येक समाज ने कुछ नियम बनाये हैं। इनमें से सामाजिक नियमों का पालन करना नैतिकता कहा जाता है और आध्यात्मिक नियमों का पालन करना धर्म सामाजिक नियमों का पालन करने से मनुष्य का केवल सामाजिक विकास होता है, जबकि आध्यात्मिक नियमों का पालन करने से उसके प्राकृतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक तीनों पक्षों का विकास होता है। सामाजिक नियम देश और काल से प्रभावित होते हैं। इसलिये नैतिकात देश-काल सापेक्ष होती है। इसके विपरित आध्यात्मिक नियम सार्वभैमिक एवं सार्वकालिक होते हैं, इसलिए धर्म देश-काल निरपेक्ष होता है। उदाहरणार्थ ब्रिटेन एवं अमेरिका के लोगों का धर्म एक है - ईसाई धर्म, किन्तु उनके सामाजिक नियम भिन्न-भिन्न हैं इसलिए उनकी नैतिकता भिन्न-भिन्न है। धर्म प्रधान समाजों में सामाजिक जीवन का आधार प्रायः धर्म ही होता है। हमारा भारतीय समाज इसी प्रकार का समाज है। यहाँ धर्म एवं नैनिकता में निकट का सम्बन्ध है। कहा जाता है कि धर्मविहीन नैतिकता, मूलविहीन वृक्ष की भॉति है, और नैतिकता विहीन धर्म फलहीन वृक्ष के समाज है।

भातर में धर्म को नैतिकता से सम्बद्ध करके ही सदैव देखा जाता है। नैतिकात में ऐसे गुणों को ढूढ़ा जाता है जो व्यक्ति को उपर उठाते है। नैतिकता में अच्छाई, बुराई भद्र-अभद्र, शिव-अशिव पर विचार करके सिर्फ अच्छाई, भद्र एवं शिवम् का अनुकरण किया जाता है। मनुष्य के लिये अच्छाई पर चलने के लिये लक्ष्य की पूर्ति धर्म करता है। धर्म एवं नैतिकता के बारे में फाण्ट ने कहा है कि जब मनुष्य कर्तव्यों को ईश्वरीय आज्ञा के रूप में देखता है तो उसके लिए नीति धर्म हो जाती है। इसी प्रकार मैथ्यूअर्नाल्ड ने कहा है कि जब नीति के साथ संवेग मिल जाता है तो नीति धर्म हो जाती है। दूसरे शब्दों में जब कर्त्तव्य में श्रद्धा जुड जाए तो वह कर्त्तव्य कार्य, धार्मिक कार्य का रूप ले लेता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

8. नैतिकता किसे कहता जाता है?

....

....

9. सामाजिक नियम किससे प्रभावित होते हैं।

....

....

10. आध्यात्मिक नियम किस प्रकार के होते है।

....

....

10.8 धर्म एवं शिक्षा में सम्बन्ध

धर्म और शिक्षा के मध्य पारस्परिक सम्बनध है। मानव जीवन का मूल या आदर्श धर्म है और शिक्षा इसी का पालन करती है। सामाजिक जीवन के लक्ष्य ही शिक्षा के कार्य हैं। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समाज में जितनी भी शिक्षण संस्थाए हैं वे सभी सामाजिक नियमों का पालन करते थे और कर रहे हैं। अत धर्म के द्वारा ही शिक्षा का मार्ग प्रशस्त होता रहा है। ई0 डी0 बर्टन के अनुसार 'धर्म एवं शिक्षा वास्तविक मित्र हैं। दोनों का सम्बन्ध प्राकृतिक तथा भौतिक जगत के विरूद्ध आध्यात्मिकता से है। दोनों मानव को उसके वातावरण के सम्पर्क में नहीं, बल्कि उसकी दासता से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न करते हैं। शिक्षा द्वारा व्यक्ति के मूल्यों कालों का विकास होता है, जिन्हें धर्म द्वारा मान्यता प्राप्त हो। शिक्षा, व्यक्ति में स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष दृष्टिकोण का विकास करती है। अब धर्म भी यही करने का दावा करता है। शिक्षा द्वारा बालक को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने का प्रयास किया जाता है। इस कार्य में धर्म बड़ा सहायक सिद्ध होता है। अतः यह सत्य है है कि शिक्षा को धर्म से अलग नहीं किया जा सकता है। धर्म के अभाव में शिक्षा मूल्यों से परे, आदर्शों से दूर होगी और यह सत्य है कि मनुष्य का विकास नहीं होगा। हमारे देश के कर्णधारों ने भी धर्म और शिक्षा के सम्बन्ध को पहचान कर धार्मिक शिखा का समर्थन किया है। महात्मा गांधी, डॉ0 राधाकृष्णन, महामना मदन मोहन मालवीय, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि लोगों ने शिक्षा में धर्म की व्यवस्था को जरूरी समझा।

धर्म मानव जीवन का एक अंग और शिक्षा जीवन की वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति की प्रवृत्तियों, व्यवहारों और संवेगों में सुधार होता है। यही कारण है कि धर्म

एवं शिक्षा का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन के प्रारम्भ के साथ होता है। प्राचीन भारतीय समाज में धर्म के गुरू ही शिक्षा देने का कार्य करते थें प्राचीन काल में शिक्षण संस्थानों के रूप में चर्च, मस्जिद और मन्दिर का प्रयोग किया जाता था। शिक्षा के पाठ्यक्रम में धार्मिक पुस्तकों को शामिल किया जाता था। हमारे देश में इस समय भी सनातन धर्म, आर्यसमाज बदन समाज, रामकृष्णमिशन, फियोसाफिकल सोसाइटी आदि के नाम पर शिक्षालय चलाये जा रहे है। धर्म, सतय, शिव एवं सुन्दर की प्राप्ति में सहायक होता है, जो शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य होता है। अत धर्म शिक्षा का प्रमुख्य साधन रहा है। धर्म और शिक्षा को अलग नहीं किया जा सकता है। इसका प्रमुख्य कारण दोनों का लक्ष्य समान है। धर्म के द्वारा व्यक्ति का जीवन, गुण और आदर्शो से सुशोभित होता हैं और उसकी बुरी प्रवृतियां नष्ट हो जाती है। यही लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वागीण विकास में सहायक होती है। आज चारों तरफ संघर्ष ही संघर्ष दिखाई दे रहा है विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषय बालक का केवल बौद्धिक विकास करते है। व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास की चिता केवल धर्म को है। धर्म ने सदैव सदगुणों का विकास किया है। धर्म से चारित्रिक बल मिलता है। वैज्ञानिक तर्क बुद्धि के साथ-साथ चारित्रिक बल आवश्यक है। अतः सच्ची शिक्षा को धर्म को अपना आधार बनाना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

11 शिक्षा का मार्ग प्रदर्शन किसके द्वारा होता है।

....

....

12. धर्म किसकी प्राप्ति में सहायक होता है।

....

....

13. धर्म एवं शिक्षा के सम्बन्धों का मुख्य कारण क्या है?

....

....

10.9 शिक्षा में धर्म का स्थान

ह्वाइटहैड ने धर्म को 'शिक्षा का सार' माना है। धर्म के अभाव में शिक्षा व्यति को कठोर एवं स्वार्थी बना देती है। यदि सामाजिक विकास की योजना में धर्म को स्थान नहीं दिया जाता है तो सामाजिक विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता है। वास्तविकता यह है कि धर्म एवं शिक्षा को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि शिक्षा और धर्म के लक्ष्य एक ही हैं। सच्ची शिक्षा का आधार धर्म है और शिक्षा को धर्म से अलग करके उसके क्षेत्र, उद्देश्य और लक्ष्य को सुंकुचित बना दिया जाता है। सच्ची शिक्षा व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करती है। धार्मिक आदर्श का भी सम्बन्ध सम्पूर्ण व्यक्तित्व से है। इस दृष्टि से भी शिक्षा का आधार धर्म होना चाहिए। इस सम्बन्ध में जार्ज डब्ल्यू0 फिस्के ने कहा है कि 'शिक्षा की अनेक परिभाषाओं मे से कोई भी ऐसी नहीं है, जो धर्म की शिक्षा की सम्भावना और आवश्यकता की सीखने की महान प्रक्रिया का अंग मानने का सुझाव न देती हो। भौतिकवादी दृष्टिकोण के सिवाय, सभी दृष्टिकोणों से शिक्षा के धार्मिक पहलू और धार्मिक विषय वस्तु दिखाई देती है। अतः शिक्षा को पूर्ण होने के लिए धार्मिक होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं करते है, तो हम शिक्षा को अधूरा छोड़ देते है।

10.10 धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व

व्यक्ति एवं समाज के जीवन में धार्मिक शिक्षा का स्थान सदैव महत्वपूर्ण रहा है। परन्तु इस शिक्षा का आधार संकीर्ण धर्म न होकर व्यापक धर्म होना चाहिए। क्योकि संकीर्ण धर्म व्यक्तियों मे भेद उत्पन्न करता है, और समाज में विभिन्न प्रकार के संघर्षों को जन्म देता है। इसी कारण गांधी जी ने बर्धा शिक्षा योजना में धर्म को कोई स्थान नहीं दिया और कहा कि 'हमने वर्धा शिक्षा योजना में धर्मों की शिक्षा को इसलिए स्थान नहीं दिया, क्योंकि हमें विश्वास है कि आज कल जिस प्रकार धर्मों की शिक्षा दी जाती है और उसका अनुसरण किया जाता है, उससे एकता के बजाय संघर्ष उत्पन्न होता है। अतः धार्मिक शिक्षा संकीर्ण धर्म पर आधारित न होकर व्यापक धर्म पर आधारित होनी चाहिए। व्यापाक धर्म पर आधारित शिक्षा की क्या आवश्यकता एवं महत्व हैं? इस सम्बन्ध में निम्न तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. आज के भौतिक युग में मनुष्य सांसारिक सुख तो प्राप्त कर लेता है,परन्तु उसे वास्तविक सुख व शान्ति नहीं मिलती है, वह उसको सिर्फ धार्मिक शिक्षा द्वारा ही प्राप्त कर सकता है।

2. व्यक्ति धर्म का आदर करता है और धार्मिक सिद्धान्तों को पालन करता है। अतः धार्मिक शिक्षा द्वारा विभिन्न प्रकार की सामाजिक बुराईयों को दूर किया जा सकता है।

3. भारत सदैव धर्म प्रधान देश रहा है। इसलिए भारतीय जीवन को धर्म से जोड़ना चाहिए।

4. धार्मिक शिक्षा द्वारा व्यक्ति में सत्य, सदाचार, इमानदारी आदि गुणों का विकास किया जा सकता है।

5. धर्मिक शिक्षा वसुधैव कुटुम्बकम का पाठ पढ़ाती है। इसलिए सभी देशों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से देनी चाहिए। इससे संसार में स्थायी रूप से शान्ति स्थापित हो सकती है।

6. धार्मिक शिक्षा व्यक्ति के मन की स्थिरता, इच्छा शक्ति और एकाग्रता को विकसित करने में सहायता करती है।

7. धार्मिक शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक और नैतिक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।

8. धार्मिक शिक्षा द्वारा व्यक्तियों में उचित आचरण का विकास होता है।

9. धार्मिक शिक्षा द्वारा सामाजिक नियन्त्रण और सामाजिक एकता का विकास होता है।

10. संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग होने के कारण धार्मिक शिक्षा संस्कृति की सुरक्षा और उन्नति में योगदान करती है।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव और सामज के जीवन में धर्म का अत्सन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि आज के व्यक्ति धन एवं भौतिवाद में विश्वास करने लगे हैं, फिर भी व्यक्ति धर्म एवं धार्मिक शिक्षा के बगैर अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता है। इसलिए बालकों को धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए चाहे उसका स्वरूप और ढंग कुछ भी हो ।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

14. सच्ची शिक्षा का आधार क्या है?

....

....

15. संकीर्ण धर्म से क्या तात्पर्य है?

....

....

10.11 धर्म निरपेक्ष भारत और धार्मिक शिक्षा

धर्म निरपेक्ष का अर्थ यह है कि राजनीतिक आर्थिक एवं सामाजिक मामलों को समस्त नागरिकों को चाहे वे किसी धर्म को मानने वालों हो या न हो समान अधिकार प्राप्त होगें। किसी भी धर्म विशेष के साथ न पक्षपात किया जायेगा और न ही कोई भेदभाव किया जायेगा और राज्य के विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर गठित श्री प्रकाश समिति ने अपने प्रतिवेदन के 13वें अनुच्छेद में धार्मिक शिक्षा की समस्या पर विचार किया है। और 14वें अनुच्छेद में संविधानों की मान्यताओं का उल्लेख किया है। संविधान की 28 वी धार में कहा गया है कि राज्य द्वारा सहायता प्राप्त। विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, परन्तु यह धारा ऐसे शैक्षिक संस्थाओं पर लागू नहीं होगी, जो राज्य द्वारा प्रशासित हो । परन्तु उनकी स्थापना धार्मिक शिक्षा उपलब्ध कराने वाले ट्रस्ट (न्यास) के द्वारा की गई हो। संविधान की 30वी धारा के अनुसार धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यकों को अपनी रुचि के अनुसार की शिक्षा संस्था स्थापित करने का अधिकार प्रदान किया गया है तथा इस प्रकार के विद्यालयों को सहायता देने में राज्य कोई भेदभाव नहीं करेगा।

10.11.1 धार्मिक शिक्षा के लक्ष्य - (Aums of Religious Education)

धार्मिक शिक्षा के निम्न लिखित लक्ष्य बताये जा सकते हैं-

1. छात्रों का सर्वांगीण विकास तथा उनके जीवन के प्रति व्यापका दृष्टिकोण पैदा करना।

2. छात्रों के नैतिकता की भावना का विकास करना तथा चरित्र को ऊंचा उठाना।

3. छात्रों में समाज, देश एवं मानवता के कल्याण हेतु त्याग की भावना उत्पन्न करता है।

4. छात्रों में इस संसार के सृष्टा और इस सृष्टि एवं मानवता के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा जागृत करता।

5. सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करना एवं उनहें पतन से बचाना।

6. छात्रों को एकाकी जीवन की अपेक्षा सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा प्रदान करना।

7. छात्रों को स्वस्थ्य एवं निरोग जीवन यापन के लिये उचित इन्द्रियनिग्रह का प्रशिक्षण देना।

8. राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त अनुशासन हीनता, वैयनस्यता, संघर्ष तथा मानसिक अशन्ति को कम करना।

9. छात्रों में मानसिक गुणों को विकसित करना एवं उन्हें सत्यम, शिवम् तथा सुन्दरम् की अनुभूति कराना।

10. निरन्तर सौन्दर्य एवं आध्यात्मिक सुख की खोज करना।

11. अपनी संस्कृति, परम्परा को सम्मान देते हुए अन्य संस्कृतियों एवं रीतिरिवाजों को उचित मान सम्मान देना।

12. छात्रों में एक दूसरे धर्मों के प्रति निष्ठा जागृत करना तथा साम्प्रदायिक मतभेदों को दूर करके सभी धर्मों के प्रति भाईचारे की भावना का विकास करना।

10.11.2

धार्मिक शिक्षा तथा शिक्षक का उत्तरदायित्व:- धार्मिक शिक्षा प्रदान करना शिक्षक का नैतिक कर्तव्य हैं, किन्तु यह कार्य एक शिक्षक के भरोसे नहीं हो सकता, विद्यालय के सभी शिक्षकों को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिए तैयार रहना होगा। सभी शिक्षक मिलकर ही धार्मिक शिक्षा का वातावरण तैयार कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं विद्यालय में धार्मिक श्रद्धा का आदर्श प्रस्तुत करे। यदि शिक्षक अपने जीवन में धार्मिक शिक्षा के आदर्श को नहीं उतार सका तो छात्र (शिक्षार्थी) भी उनका अनुकरण करके सदाचारी नहीं बन सकेंगे। शिक्षक धर्मों का सैद्धान्तिक विवेचन तभी कर सकता है जब उसमें निम्न गुण हों जैसे- सहनशीलता, धैर्य, विवेक, संयम, सरलता तथा वस्तुनिष्ठ आदि।

विद्यालय में धार्मिक शिक्षा देते समय कभी-कभी संकट उत्पन्न हो सकता है।

क्योंकि विद्यालय एक ऐसा स्थान है जहाँ विभिन्न मतों को मानने वाले विद्यार्थी अध्ययन करने आते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक को चाहिए कि धार्मिक शिक्षा देते समय किसी एक मत से सम्बद्ध न हो। सभी विद्यार्थियों का ध्यान रखे। शिक्षक को ऐसी परिस्थिति में धार्मिक शिक्षा देते समय वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

10.11.3 धार्मिक शिक्षा तथा पाठ्य सामग्री

धार्मिक शिक्षा की पाठ्यसामग्री ऐसी हो जिससे छात्रों में समस्त धर्मों तथा लोगों के प्रति संघर्ष तथा मन मुटाव समाप्त करके, उन्हें प्रेम तथा भाइचारे के सूत्र में पिरोना। अतः धार्मिक शिक्षा की पाठ्यसामग्री छात्रों की योग्यता तथा उनकी आयु को ध्यान में रखकर तैयार करनी चाहिए।

धार्मिक शिक्षा की पाठ्य सामग्री बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी धर्म विशेष की बातों को प्रमुखता न दी जाय बल्कि दुनिया के समस्त धर्मों के बारे में छात्रों को ज्ञान प्रदान कराना चाहिए। छात्रों को धार्मिक नेताओं के जीवन के प्रमुख घटनाओं को बत्ताना चाहिए। विभिन्न धर्मों की मूलभूत मान्यताओं को बताते समय दुनिया के धर्मों में व्याप्त मौलिक एकता पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। संक्षेप में धार्मिक शिक्षा की पाठ्य सामग्री में निम्न को महत्व देना चाहिए - आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध, व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध, सृष्टि का परम सत्ता से सम्बन्ध, प्रकृति का स्वरूप, ईश्वर का स्वरूप, प्रार्थना के प्रकार, आवश्यकता एवं विधि सनातन धर्म, वर्णाश्रम, आर्य समाज, वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म, ईसाई धर्म, इस्कान धर्म, पारसी आदि।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

16. संविधान की 28वीं धारा में क्या कहा गया है।

....

....

17. धार्मिक शिक्षा के तीन उद्देश्य बताइये।

....

....

18. धार्मिक शिक्षा की पाठ्य सामाग्री में सम्मिलित किये जाने वाले तीन बातों का उल्लेख कीजिए।

(क) ....

(ख)..

(ग) ....

19. धार्मिक शिक्षा के अध्यापाक में पाये जाने वाले तीन गुणों का उल्लेख कीजिए।

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

10.12 धार्मिक शिक्षा के अवगुण

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत धार्मिक शिक्षा प्रदान करने से कोई भी बालक किसी विशेष धर्म के पूजा पाठ एवं कर्म काण्ड सीख लेता है। इस कारण उसका दृष्टिकोण उदार बनने की अपेक्षा संकुचित हो जाती है, जिससे उस बालक की सहानुभूति धर्म विशेष तक ही सीमित हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता पर विघटन के बादल मडराने लगते हैं । धार्मिक शिक्षा बालक को परी लोक की कथा जैसी लगती है। इस कारण वर्तमान के धरातल का बालक को आभास ही नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप बालक बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक यर्थाकता तथा जीवन के लम्बे सफर पर इधर-उधर भटकता रहता है। धार्मिक शिक्षा द्वारा वालक के मन में संघर्षों से जूझने का विचार नही उत्पन्न हो पाता। छात्र कल्पना लोक में घूमने में ही आनन्द प्राप्त करने लगता है। धार्मिक शिक्षा से छात्रों में कभी-कभी साम्प्रादायिक भावना भड़क उठती है, जिससे वे अन्धविश्वासी एवं धर्मान्ध बनकर अन्य सम्प्रदाय एवं धर्म के लोगों को हीन मानने लगते हैं ।

धार्मिक शिक्षा से विभिन्न समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जैसे :

1. विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने वाले बालक विभिन्न सम्प्रदाय के होते हैं, ऐसी स्थिति में दूसरे धर्म की शिक्षा देने से उस धर्म से अलग बालकों को भेदभाव की स्थिति का सामना करना पड़ता है।

2. वर्तमान समय तक की धार्मिक शिक्षा का स्वरूप क्या हो ? इस बात पर विद्वानों में मतभेद है।

3. विभिन्न धर्मों के लिए अलग-अलग विद्यालय खोलने होंगे, जिसके लिए अर्थ की समस्या उत्पन्न होगी।,

4. धार्मिक शिक्षा प्रदान करेन हेतु अनुभवी शिक्षकों की आवश्यकता होगी, जिसकी अत्यधिक कमी है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

20. धार्मिक शिक्षा प्रदान करने में आने वाली तीन समस्याएं बताओ।

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

10.13 सारांश

इस इकाई में धर्म का अर्थ और उसके कार्यों का वर्णन किया गयाऔर बताया गया कि धर्म का अर्थ जो धारण किया जाए। धर्म व्यक्तियों की आध्यात्मिकता एवं ईश्वरीय गुणों का विकास करके उसकी भावनाओं को उदात्त बनाती है साथ ही वह सामाजिक सम्बन्ध एवं सांस्कतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति कराती है। इसके बाद धर्म के अंग एवं हिन्दू धर्म की व्याख्या किया गया और बताया गया कि धर्म को चार भागों में बांटा जा सकता है और धर्म के दस लक्षण होते हैं, जिनको धारण करने से व्यक्ति का शुभ, मंगल एवं कल्याण होता है। इस इकाई में धर्म का नैतिकता एवं शिक्षा से सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया और बताया गया कि धर्मविहीन नैतिकता मूल विहीन वृक्ष की भाँति और नैतिकता विहीन धर्म फलहीन वृक्ष के समान होता है। इसी प्रकार धर्म और शिक्षा का घनिट का लक्ष्य समान होता है। अन्त में इस इकाई में धर्म निरपेक्ष भारत में धार्मिक शिक्षा का लक्ष्य, पाठ्य सामग्री एवं आध्यापक कैसा होना चाहिए, बताया गया है और धार्मिक शिक्षा प्रदान करने में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का भी

वर्णन किया गया है।

10.14 अभ्यास कार्य

1. धर्म के अर्थ की विवेचना कीजिए।

2. धर्म के कार्यो को विश्लेषित कीजिए।

3. धर्म के अंगों का उल्लेख कीजिए ।

4. हिन्दू धर्म की व्याख्या कीजिए।

5. धर्म एवं नैतिकता के सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।

6. धर्म एवं शिक्षा के सम्बन्ध को विश्लेषित कीजिए।

7. धर्मनिरपेक्ष भारत में धार्मिक शिक्ष के स्वरूप को निम्न बिन्दुओं पर निर्धारित कीजिए-

(क) धार्मिक शिक्षा के लक्ष्य (ख) पाठ्य सामाग्री (ग) अध्यापक

8. धार्मिक शिक्षा की समस्याओं की विवेचना कीजिए।

10.15 बोध प्रश्न के उत्तर

1. जो धारण किया जाए।

2 (क) ईश्वरीय गुणों का विकास करना

(ख) आध्यात्मिक विकास करना

(ग) भावनाओं का उदात्तीकरण करना।

3. श्री प्रकाश

4. एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से सम्बन्ध स्थापित करना।

5 (क) धर्म प्रव्र्तक का व्यक्तित्व (ख) उद्गम (ग) धार्मिक कार्य (घ) नैतिक संहिता

6. यूनान के लोगों ने

7. (क) धैर्य (ख) क्षमा (ग) शान्ति

8. सामाजिक नियमों के पालन करने को नैतिकता कहा जाता है।

9. देश और काल से प्रभावित होते हैं।

10. सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक होते हैं?

11. धर्म द्वारा

12. सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् की प्राप्ति में

13. धर्म एवं शिक्षा के सम्बन्धों का मुख्य कारण दोनों का लक्ष्य समान होना है।

14. सच्ची शिक्षाा का आधार धर्म हैं ।

15. संकीर्ण धर्म व्यक्तियों में भेदभाव उत्पन्न करता है और समाज में विभिन्न प्रकार के संघर्षों को जन्म देता है।

16. राज्य द्वारा सहायता प्राप्त किसी विद्यालय में धार्मिक शिक्षा नहीं दिया जायेगा, किन्तु यह बात उन शैक्षिक संस्थाओं पर लागू नहीं होगी, जिन्हें राज्य प्रशासित तो करता है, किन्तु उनकी स्थापना धार्मिक शिक्षा प्रदान करने वाले न्यास के द्वारा की गई हो ।

17.(क) नैतिकता की भावना का विकास करना तथा चरित्र को ऊँचा उठाना।

(ख) समाज, देश एवं मानवता के कल्याण हेतु त्याग की भावना उत्पन्न करना।

(ग) सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा करना एवं अच्छे पतन से बचाना।

18. (क) आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध (ख) सृष्टि का परम सत्ता से सम्बन्ध

(ग) ईश्वर का स्वरूप

19. (क) मृदुभाषा (ख) सहनशीलता (ग) वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण

20. (क) धार्मिक शिक्षा के स्वरूप पर विद्वानों में मत भिन्नता

(ख) विभिन्न धर्मो हेतु विद्यालय खोलने के लिए धन की समस्या

(ग) धार्मिक शिक्षा हेतु अनुभवी शिक्षकों की कमी ।

इकाई 11 शैक्षिक मूल्य

संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 मूल्य का अर्थ

11.4 मूल्य में गिरावट

11.5 मूल्यों की श्रेणियां

11.6 मूल्य शिक्षा का अर्थ

11.7 मूल्य शिक्षा के उद्देश्य

11.8 मूल्य शिक्षा की आवश्यकता

11.9 शिक्षा के उद्देश्यों का निर्णय

11.9.1 सामान्य एवं अन्तिम उद्देश्य

11.9.2 निश्चित एवं समीपवर्ती उद्देश्य

11.10 शिक्षा एवं मानव मूल्य

11.11 सारांश

11.12 अभ्यास कार्य

11.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.1 प्रस्तावना

जीवन को बेहतर एवं सुसंस्कृत बनाने और उसमे स्वामित्व लाने के लिए मूल्यों की विशेष भूमिका होती है। जीवन और संसार को जिस रूप में हम समझने का प्रयास करते हैं, उस अर्थ को ही सामान्य रूप से मूल्य कहा जाता है। मूल्य की अवधारणा व्यक्ति के प्रत्येक चुनाव,निश्चित निर्णय कार्य में विद्यमान होती है। जब व्यक्ति दो वस्तुओं या कार्य निष्पादन का चुनाव करके, उसकी पूर्ति के लिए यह निश्चय करता है कि कौन सी वस्तु या प्रक्रिया सही, तत्पश्चात् इसका निर्णय कर जीवन में कार्य करता है तो वह मूल्य के क्षेत्र में प्रवेश करता है। इस चुनाव, निर्णय तथा निश्चय में

उन वस्तुओं के मूल्य की अवधारणा छिपी रहती है । व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक दिन तथा प्रत्येक पल में कुछ ऐसे ही निर्णय हर कदम पर करता है, वह किसी वस्तु को पसन्द करता है,तो दूसरी को नापसन्द, एक को सही मानता है तो दूसरे को गलत एक की प्रशंसा करता है तो दूसरे की बुराई। ये सभी निर्णय मूल्य अवधारणा पर ही आधारित होता है। जीवन में अच्छे मूल्यों के प्रति आदर होने से व्यक्ति चरित्रवान बनता है। तथा गलत मूल्यों को अपनाने से चरित्र का पतन होता है। सभी शिक्षा शास्त्रियों ने मूल्यों की शिक्षा पर बल दिया है। वस्तुतःजीवन के कर्त्तव्यो का ठीक ढंग से निर्वाह करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति का मूल्यो की शिक्षा में आस्था हो।

मूल्य ऐसी आचरण संहिता या सद्गुणों का समूह होता है, जिसे अपना कर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। परन्तु आज चारों ओर हर क्षेत्र में मूल्यों मे भारी गिरावट दिखाई दे रही है इसलिए शिक्षा ऐसी हो जिससे व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छा से मूल्यों का पालन करे। जिससे उसका व समाज दोनों का कल्याण हो सके। इस इकाई में मूल्य का अर्थ एवं ह्रास का वर्णन किया गया है। मूल्यों के प्रकार एवं उनकी श्रेणियाँ बतायी गयी है। इसी इकाई में शिक्षा के उद्देश्यों का निर्णय एवं शिक्षा और मानव मूल्य का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह इकाई शिक्षार्थियों को मूल्यों के प्रति जागरुक करेगी।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेगे कि-

- मूल्य का अर्थ बता सकेंगे।
- मूल्यों के ह्रास को स्पष्ट कर सकेगे।
- मूल्यों के प्रकार बता सकेंगे।
- मूल्यों की श्रेणियों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा के उद्देश्यो का निर्णय कर सकेंगे।
- मानवमूल्य एवं शिक्षा की विवेचना कर सकेंगे ।

11.3 मूल्य का अर्थ (Meaning of Values)

मूल्य को अंग्रेजी में Value कहते हैं, जिसका अर्थ किसी वस्तु की कीमत, विशेषता, गुण और उपयोगिता से लगाया जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से मूल्य का

अर्थ बहुत व्यापक होता है। मूल्य ऐसी आचरण संहिता या सद्‌गुणों का समूह है, जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की धारणाएं विचार, विश्वास,मनोवृत्ति एवं आस्था आदि सम्मिलित होती है। व्यक्ति के जीवित रहने के लिए उसकी इच्छा पूर्ति का होना आवश्यक है। मूल्य ही वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी इच्छा पूर्ति करता है। प्रोफेसर अर्बन ने अपनी पुस्तक 'फण्डामेण्टल आफ ऐथिक्स में लिखा है कि 'मूल्य वह है, जो मानव इच्छा की तृप्ति करे और जो व्यक्ति तथा इसकी जाति के संरक्षण में सहायता करें। इसी प्रकार का विचार हेण्डरसन का भी है। वे कहते हैं कि मनुष्य अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिए क्रियाशील रहता है, कोई भी वस्तु जो मानवीय आश्यकताओं की पूर्ति करती है, मूल्य कहलाती है। व्यक्ति जीवन पर्यन्त सीखकर निरन्तर अपने अनुभवों में वृद्धि करता है। अनुभव प्राप्त करने से उसमें एक परिपक्वता आती है, और वह ऐसे अनुभव प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करता है। ये निर्देशक ही मूल्य कहलाते हैं। मूल्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए एम0टी0 रामजी ने कहाहै कि 'मूल्य उसे कहते हैं, जिसे हम प्राप्त करने की इच्छा रखते है एवं जिसके लिए प्रयास करते हैं। मूल्य जीवनके वे दिशा निर्देशक आदर्श है, जो मानवके शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायक होने के अतिरिक्त सामाजिक कल्याण एवं समायोजन की प्रक्रिया को संस्कृति की आदर्शों के अनुरुप आगे बढ़ाते हैं। बेवर ने कहा है कि 'मूल्य निर्णय के वे कथन है, जो मानवीय क्रिया जगत में क्या होना चाहिए, क्या नहीं होना चाहिए, क्या वांछनीय है, क्या नही का निर्देश देते हैं।

मूल्यों के उद्‌भव पर गहराई से विचार करने पर प्रतीत होता है कि मूल्य सर्वप्रथम मनुष्य द्वारा अपने सामाजिक जीवन को नियमित करने की दृष्टि से ही निर्मित किये जाते हैं। दूसरे शब्दों में इन निमयों को मनुष्य किन्हीं बाह्य अतीन्द्रिय श्रोतों से प्राप्त नहीं करता, बल्कि स्वयं अपनी ही प्रकृति से प्राप्त करता है। इस नितान्त वैयात्तिक दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए कुछ विचारकों विशेष रूप से सार्त्र का कहना है कि 'मनुष्य अपने मुक्त संकल्पों के द्वारा मूल्यों को प्रस्तुत करता है, और उन्हीं के द्वारा उसका निजी व्यक्तित्व आकार ग्रहण करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

1. मूल्य किसे कहते हैं?

....

....

2. मूल्यों को क्यों निर्मित किये जाते हैं?

....

....

11.4 मूल्यों में गिरावट

इस भौतिक युग में व्यक्ति का स्वार्थ चरम पर है, इसी कारण मूल्यों में बहुत गिरावट हो रही है। व्यक्ति का मूल्यों के प्रति लगाव समाप्त होता जा रहा है। वर्तमान समाज में भौतिक मूल्यीं को आध्यात्मिक मूल्यों की तुलना में अधिक महत्व दिया जा रहा है। श्री कालाघाटी स्वामी ज्ञानेश्वरानन्द तथा उन जैसे अनेक विद्वानों का भी यही विचार है कि आज के समाज में आत्मा और जीवन के मूल्यों को निरर्थक कहकर छोड़ दिया गया है तथा जीवन की सफलता भौतिक प्रगति के आधार पर ही है तथा जीवन की सफलता भौतिक प्रगति के आधार पर ही आंकी जा रही है।

मूलतः भौतिक दृष्टिकोण के कारण आज का जीवन अव्यवस्थित एवं यान्त्रिक सा हो गया है। आधुनिक मानव किसी भी कार्य की उपयोगिता तथा व्यावहारिकता से ही अधिक प्रभावित दिखाई देता है। राधाकृष्णन ने कहा है कि- यह युग एक प्रकार से बौद्धिक और आध्यात्मिक वर्बरता का युग है,उन्होंने इस युग को आध्यात्मिक दिवालियेपन का युग बताया है। इसी प्रवृत्ति के कारण देशमें अव्यवस्था फैल रही है और अपराधों की संख्या बढ़ रही है। देश की नई पीढ़ी यानि किशोर एवं युवा वर्ग भ्रष्ट हो रहे है, क्योंकि इनकी महत्वाकाक्षाएं अनियमित रूप से बढ़ गयी हैं और इन महत्वाकांक्षाओं के साथ अपने को समायोजित करने में वे असमर्थ हो रहे हैं।

यदि वर्तमान परिपेक्ष्य पर दृष्टिपात किया जाय तो चारो ओर हर क्षेत्र में मूल्यो मे भारी गिरावट देखने को मिलती है। प्रत्येक व्यक्ति अपना विकास करने के लिए दूसरो का गला काटने को तैयार है। हमारे व्यक्गित पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन मे तनाव के कारण दिन-प्रतिदिन घुटन बढ़ रही है फलस्वरूप सामाजिक जीवन में सहयोग समाप्त होता जा रहा है।

पारिवारिक जीवन दुखद हो रहा है, गरीबों तथा असहायों का शोषण बढ़ रहा है। व्यक्ति स्वार्थी, अवसरवादी, चाटुकार एवं कर्त्तव्य विमुख होता जा रहा है। जीवन की शान्ति न जाने कहाँ भागे जा रही है। आंधी प्रति स्पर्धा की दौड़ में हर कोई दूसरे पर हावी होकर आगे बढ़ना चाह रहा है। भौतिकता की आंधी में, स्वार्थपरता के तूफान में सभी नैतिक , सामाजिक, अध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य नष्ट होते जा रहे हैं। आज देश मे नैतिक भ्रष्टता,स्वार्थ, बेइमानी, शोषण,भ्रष्ट्रचार, रिश्वत, आदि का व्यवहार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्पष्ट दिखाई दे रहा है। इस स्थिति को श्री कन्हैया लाल मणिक लाल मुंशी ने नैतिक शून्यता का नाम दिया है।

अपनी 'करप्शन' नामक पुस्तक में श्री मोन्टेरियो ने कहा है कि मूल्यों में विघटित आस्था ने मनुष्य को ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया है, जहाँ उसका किसी भी सामाजिक संस्था और तत्सम्बन्धी दायित्यों में कोइ विश्वास नहीं रह गया है। वास्तव में यह स्थिति व्यक्ति के दृष्टिकोण के साथ-साथ सामाजिक तथा राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भी अत्याधिक निराशाजनक है। आज के भारत में मनुष्यों ने मानवता, मानवीय सम्बन्धों और आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास खो दिया है, जिसके कारण शान्ति और सहअस्तित्व समाप्त हो गया है। आज का व्यक्ति ज्ञान और शक्ति तो रखता है, पर विवेक नहीं। जैसा कि टी0एस0 इलिएट ने कहा है कि 'हमने विवेक को कहाँ खोया ? ज्ञान में, हमने ज्ञान को कहाँ खोया? सूचना में। विगत बीस शताब्दियों में हम ईश्वर से दूर होते गये और व्यर्थ की चीजों के करीब होते गये।'

हमारी लौकिक इच्छायें इतनी अधिक बढ़ गयी है कि मनुष्य में स्थित दिव्यता को प्राप्त करने की इच्छा को हृदय में स्थान देने के लिए हमारे पास समय ही नहीं रह गया है और यह सब इसलिए हो रहा है कि आज का व्यक्ति किसी केन्द्रीय तथ्य के अभाव में निरुद्देश्य भटक रहा है। यही कारण है कि आज का मनुष्य न तो आन्तरिक रूप से प्रसन्न और शान्त है, और न ही नैतिक और आध्यत्मिक रूप से चेतना के उच्चतम लक्ष्यों की ओर बढ़ने का इच्छुक है। इस प्रकार आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा के अभाव से पीड़ित आधुनिक मानव दया के योग्य प्राणी बन गया हैं, क्योंकि इनके अभाव से उसमें संवेगात्मक अंसतुलन और मानसिक अयोग्यता उत्पन्न हो गयी है। इस अवस्था को परिलक्षित करते हुए पालब्रंटन का कहना है कि 'आज का मनुष्य एक लक्ष्यहीन पथिक है। वह बाह्य परिस्थितियों से इतना अधिक प्रभावित है कि उसने जीवन के उच्चतम प्रयोजनों को वस्तुतः त्याग ही दिया है।'

मूल्यों के ह्रास के सम्बन्ध में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के पैरा 8.4 में कहा गया है कि 'इस बात पर गहरी चिन्ता प्रकट की जा रही है कि जीवन के लिए आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और मूल्यों पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की जरुरत है, जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त साधन बन सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

3. वर्तमान समय में किन मूल्यों को अधिक महत्व दिया जा रहा है?

....

....

4. मूल्यों के ह्रास के विषय में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में क्या कहा गया है?

....

....

11.5 मूल्यों की श्रेणियां

मूल्य सद्‌गुणों का वह समूह है जिसे मनुष्य अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से अपना कर अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु जीवन शैली का निर्माण करता है, और अपने व्यक्तित्व का विकास करता है।

मूल्यों की अपनी श्रेणियां एवं स्तर होते हैं। पशुओं एवं मनुष्यों के समान इच्छाओं पर आधारित मूल्य को निम्न मूल्य कहा जाता है। बौद्धिक इच्छाओं को उच्च मूल्य कहा जाता है, क्योंकि बौद्धिक इच्छा पशुओं में नहीं होती यह केवल मनुष्य में ही होती है। बौद्धिक इच्छाओं को भी दो श्रेणियां होती हैं -

1- नैमित्तिक एवं

2- आन्तरिक।

जिन विषयों का चयन व्यक्तिगत निर्णय पर आधारित होता है, उसे नैमित्तिक विषय कहा जाता है। नैमित्तिक विषय का स्तर उच्च नहीं होता है। इसके विपरीत जो विषय अपने में पूर्ण होते हैं तथा बिना किसी अन्य की इच्छा पर निर्भर करे वे आन्तरिक विषय होते हैं, इनमें आन्तरिक मूल्य होते हैं, इसीलिए ये श्रेष्ठ भी होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जिन वस्तुओं में उनकी पूरी रूपरेखा सन्निहित होती है, और जिनको चिदबिन्दु की बहुत कम आवश्यकता होती है, वे उच्च स्तर के होते है। बहुविषय जो नैमित्तिक होते हैं, व्यक्तिगत मान्यताओं पर निर्भर होते हैं, और जिसके विषय में पूर्व निश्चय नहीं किया जा सकता हो, वह निम्न स्तर के होते हैं।

विषय चयन में किसी शिक्षा पद्धति का चयन करना कठिन होता है, क्योंकि प्रणाली या विधि का प्रभाव दूर-दूर तक पड़ता है। उदाहरणार्थ बेरोजगारी की समस्या को लिया जा सकता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या छात्रों के लिए व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था हो? या बेरोजगारी दूर करने के लिए निःशुल्क शिक्षा दी जाए? इस दशा में हमारा चुनाव मूल्यों की समस्या से ग्रसित होगा । इसके प्रभाव का अन्दाजा इसी बात से हो जायेगा कि समाज की सभी समस्याएं अपने में ही सीमित नहीं रहती, इसलिए उस समस्या के समाधान का प्रभाव भी सीमित नहीं रहेगा ।

नैमित्तिकवादी विचारक अच्छी तरह जानते हैं कि किसी मूल्य को पहले से निश्चित नहीं कर सकते। इस हेतु वह समस्या के कारण जानने का प्रयास करेगा तत्पश्चात् उसका समाधान निकालेगा वह किसी बात के अंतिम उद्देश्य पर विचार न करके समस्या पर ही विचार करेगा। आन्तरिक मूल्यों के समक्ष नैमित्तिक मूल्यों की बात का कोई महत्व नहीं होता। इसके बावजूद यह बात उचित एवं सही नही है कि आन्तरिक मूल्य वाले सभी विषय समान महत्व के होते है। उदाहरणतः हिन्दी के छात्र हेतु हिन्दी एवं गणित के छात्र के लिए गणित ही मूल्यवान होता है। इसलिए हिन्दी व गणित के विषयों की तुलना भी नहीं की जा सकती है।

मूल्यों को मानने के आधार के सम्बन्ध में आन्तरिक मूल्यों को मानने वाले विचारकों का कहना है कि चूंकि मनुष्य तार्किक एवं बुद्धिमान होता है इसीलिए विषयों का चयन तार्किक एवं बुद्धि के आधार पर करना चाहिए। चूंकि बौद्धिकता ही विश्व का आधार होता है, अतः इसी के अनुसार विषयों का चयन करना चाहिए,जिससे विश्व का ज्ञान प्राप्त हो सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

5. निम्न मूल्यों किसे कहा जाता है?

....

....

6. उच्च मूल्य किसे कहा जाता है?

....

....

11.6 मूल्य शिक्षा का अर्थ

मूल्य शिक्षा की अवधारणा अपेक्षाकृत आधुनिक एवं बहुत व्यापक है। मूल्य शिक्षा का आशय उस प्रकार की शिक्षा से है, जिसमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य सम्मिलित होते हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न विषयों को मूल्योन्मुख करके उसके द्वारा विभिन्न मूल्यों को छात्रों के व्यक्तित्व में समाहित करने का प्रयास किया जाता है, जिससे बालक का सार्वोन्मुखी विकास हो सके।

मूल्य शिक्षा विद्यालय के अन्दर एवं बाहर अनौपचारिक रूप से बालक को विकास एवं व्यवहार की उचित दिशा प्रदान करती है। छात्रों को मूल्यों के प्रति प्रेरित करने के लिए आवश्यक है कि ऐसी परिस्थिति निर्मित की जाए जो बालकों में स्वयं मूल्यों की ओर ध्यान आकृष्ट कर उनका विकास करे जैसे नागरिक शास्त्र विषय द्वारा छात्रों में राष्ट्रप्रेम, भाषा शिक्षण द्वारा सहयोग,नैतिक शिक्षा द्वारा चारित्रिक तथा पाठ्य सहगामी क्रियाओं द्वारा प्रेम, सहयोग, दया,सहिष्णुता, परोपकार जसे मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

11.7 मूल्य शिक्षा के उद्देश्य

मूल्य शिक्षा के निम्न उद्देश्य बताये जा सकते है-

1. छात्रों में सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, प्रेम, सहानुभूति जैसे मानवीय गुणों

का विकास करना।

2. छात्रों में उचित एवं अनुचित में अन्तर करने की क्षमता का विकास करना।

3. छात्रों को देश के प्रति कर्त्तव्यों से अवगत करना।

4. छात्रों मे राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगके लिए प्रेरित करना।

5. देश की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में उन्हे जागरुक करना।

6. छात्रों को स्वयं को जानने हेतु प्रेरित करना, ताकि वह स्वयं में आस्था रख सकें ।

7. छात्रों को अपने पर्यावरण के प्रति जागरुक बनाना।

8. संस्कृति को हस्तान्तारित करना तथा उसकी महत्ता बनाये रखना।

9. छात्रों में समाज के साथ उचित समायोजन की भावना का विकास करना।

10. छात्रों को एक योग्य एवं उत्तरदायी नागरिक बनाने के लिए प्रशिक्षित करना।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मूल्य शिक्षा का उद्देश्य बालक के जीवन के प्रत्येक पक्ष का सुधार करना है।

11.8 मूल्य शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व

आज मूल्य की अवधारणा में परिवर्तन हो गया है। प्राचीन भारतीय मूल्य लुप्त होते नजर आ रहे हैं, जीवन मूल्यों का ह्ास हो रहा है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में व्यक्ति अपने परम्पराओं एवं संस्कारों से विमुख होता जा रहा है, परिणामतः हमारे मूल्य दब सेगये है। फिर भी इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि मूल्यों का ह्ास हुआ है नाश नहीं। आज भी भारतीय संस्कृति जीवित है। आज भी व्यक्ति हिंसा को गलत एवं प्रेम, सहयोग, दया आदि कोसही मानता है। स्त्रियों का सम्मान करता है। अनैतिक कार्यों का विरोध करता है और नैतिक कार्यो का समर्थन , किन्तु आधुनिकता के कारण व्यक्ति कभी मूल्यों के नजदीक आता है, तो कभी दूर जाता है। व्यक्ति की इस संशय की स्थिति को दूर करने के लिए मूल्य शिक्षा की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से जान पड़ती है।

1. व्यक्ति के चारित्रिक विकास एवं उन्नति के लिएः- स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कहा है कि 'चरित्रवान बनो, जगत अपने आप मुग्ध हो जायेगा।' गांधी जी ने भी ज्ञान का उद्देश्य उत्तम चरित्र का निर्माण बताया और कहा कि सच्चरित्रता के बिना केवल बौद्धिक ज्ञान सुगन्धित शव की भांति होती है। इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति के जीवन में चरित्र का बहुत महत्व होता है। व्यक्ति के जीवन में चरित्र का महत्व होते हुए भी आज इसकी स्थिति बहुत सोचनीय है। यद्यपि आज के शैक्षिक संस्थाओं द्वारा छात्रों में चारित्रिक विकास के लिए प्रयास किया जाता है, किन्तु स्थिति में विकास की बजाय गिरावट आती जा रही है। आज की शिक्षा संस्थाएं, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भ्रष्ट्राचार एवं शोषण के केन्द्र बनते जा रहे है। अच्छे चरित्र का निर्माण अच्छे मूल्यों से होता है, इसलिए छात्रों में चारित्रिक विकास एवं उन्नति के लिए मूल्य शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है।

2. व्यक्तिगत एवं समाज के विकास के लिएः- व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है, उसमें उचित अनुचित, नैतिक अनैतिक समझने की क्षमता होती है, इसीलिए उसे नैतिक कहा जाता है। व्यक्ति समाज में रहता है, इसीलिए समाज व्यक्तियों का ऐसा समूह होता है, जहाँ मेलजोल एवं अच्छा कार्य व्यवहार आवश्यक होता है क्योंकि व्यक्तियों के अच्छे कार्यों से ही समाज का विकास होता है। जो व्यक्ति जितना अधिक समाज के साथ समायोजित होता है, उसमें उतना ही अधिक सहयोग, सामंजस्य, सहानुभूति की भावना होती है। जिस समाज के व्यक्तियों में ऐसी भावना होती है, उस समाज का विकास होता है। इसलिए व्यक्तियों मं उपर्यूक्त गुणों एवं समाज के विकास एवं उन्नति के लिए मूल्य शिक्षा की अत्याधिक आवश्यकता है।

3. राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिएः- व्यक्ति का चरित्र उसके निजी एवं राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्रिया-कलापों से पता चलता है। वर्तमान समय में राजनीतिज्ञों एवं कुछ अन्य लोगों के क्रिया-कलापों द्वारा देश में विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं इसीकारण अन्य देशों के लोगों की नजरे देश में अशान्ति एव खण्डता फैलाने पर लगी है। लोगों कोजाति, धर्म, वर्ण, सम्प्रदाय, भाषा, शिक्षा एवं अन्य आधारों पर बाँटकर वैमनस्यता फैलायी जा रही है। ऐसी स्थिति में लोगों के अन्दर राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करना आवश्यक हो गया है। इसीलिए लोगों में राष्ट्रीयता का विकास हो, इसीलिए मूल्य शिक्षा दी जानी चाहिए।

4. वातावरण शुद्धिकरण के लिएः- विभिन्न परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि बालक के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर वातावरण का व्यापक प्रभाव

पड़ता है। मनोवैज्ञानिक वाट्सन ने व्यक्ति के विकास में वातावरण को अधिक महत्व दिया और यहाँ तक कहा कि "मुझे नवजात शिशु को दे दो, मैं उसे डाक्टर, वकील य जो चाहूँ बना सकता हूँ। स्पष्ट है कि व्यक्ति पर उसक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। यह वातावरण विभिन्न प्रकार (परिवार, विद्यालय, समाज या राष्ट्र) का हो सकता है। इन वातावरणों से व्यक्ति का जीवन सम्बन्धित होता है। आज विभिन्न परिवारों, समाजों एवं राष्ट्रों के बीच जो तनाव, संघर्ष, कलह, मारपीट आदि है, का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ रहा है। इसीलिए बालक के वातावरण के शुद्धिकरण हेतु मूल्य शिक्षा होनी अति आवश्यक है।

5. संस्कृति के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन हेतु :- भारतीय संस्कृति व्यक्ति के जीवन को उत्तरादायित्वपूर्ण तरीके से जीने हेतु प्रेरित करती है, किन्तु वर्तमान समय में व्यक्तियों द्वारा पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के अन्धानुकरण से भारतीय संस्कृति का ह्रास हो रहा है। आज स्थायी सुख देने वाले मूल्यों की जगह क्षणिक सुख देने वाले मूल्यों को आत्मसात किया जा रहा है, इसी कारण लोगों में प्रतिस्पर्धा, नैराश्य, उदासीनता, हताशा, निराशा की भावना उत्पन्न हो रही है। इस स्थिति में भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप ही परिवर्तित होता जा रहा है। इसीलिए संस्कृति संरक्षण एवं सम्बर्द्धन हेतु मूल्यों की शिक्षा अति आवश्यक है।

उपर्युक्त के अलावा कुछ अन्य कारणों से भी मूल्य शिक्षा की आवश्यकता जान पड़ती है।

1. राष्ट्र के उन्नतिशील विकास एवं सुखद भविष्य के लिए
2. भौतिक एवं आध्यात्मिक संस्कृति में समन्वय के लिए
3. उचित एवं अनुचित में अन्तर रखने के लिए
4. व्यक्ति के सुखद एवं समृद्धिशाली भविष्य के लिए
5. बालक के सर्वागीर्ण विकास के लिए
6. मूल्यों के ज्ञान एवं उसके प्रति आस्था के लिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

7. मूल्य शिक्षा की आवश्यकता के लिए तीन कारण बताइये :-

(क) ....
....

(ख) ....
....

(ग) ....
....

11.9 शैक्षिक मूल्यो के आधार पर शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा का उद्देश्य क्या हो ? इस बात का निर्णय वर्तमान समय की आवश्यकता के आधार पर ही होता है। इससे हमे इच्छित उद्देश्य की जानकारी हो जाती है, परन्तु उन उद्देश्यों की जानकारी नहीं हो पाती जिनकी इच्छा होनी चाहिए। यद्यपि विचारक सत्य के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं, फिर भी हमें यह पता है कि शिक्षा का उद्देश्य दर्शन द्वारा ही निर्धारित होता है। दर्शन द्वारा शिक्षा के उद्देश्य को सामान्य एवं निश्चित तथा अन्तिम एवं समीप की श्रेणियों में बांटा जा सकता है ।

सामान्य तथा अन्तिम उद्देश्यः-

सामान्य तथा अन्तिम उद्देश्य का निश्चय दर्शन के आधार पर होता है। धार्मिक व्यक्तियों के लिए ईश्वर ही इस विश्व का श्रष्टा होता है इस बात का बोध कराना ही शिक्षा का उद्देश्य होता है । इसके लिए ईश्वर की आज्ञाओं को मानना और उसकी प्रतिच्छाया बनकर रहना ही जीवन का लक्ष्य होता है। इसी उद्देश्य के समान आत्मबोध का उद्देश्य होता है, जिससे मनुष्य की शक्तियों का संपूर्ण विकास होता है। आत्मबोध का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता है, क्योंकि हम यह जानते हैं। कि सभी मनुष्यों का विकास नही होता है। आत्मबोध के अर्थ का निश्चय न होने के कारण आत्मबोध का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता है । यदि हम मनुष्यों की तार्किक एवं बौद्धिक शक्तियों का विकास कर दें, तो शिक्षा का उद्देश्य इन शक्तियों का विकास हो जायेगा। आत्मबोध का एक रूप मनुष्य की बुद्धि का विकास भी होता है, तब आत्मबोध का दूसरा रूप मनुष्य को अपनी पूर्णता को प्राप्त करना भी होगा,अर्थात जिस प्रकार का समाज होता है, उसी प्रकार शिक्षा का उद्देश्य भी होता है।

कुछ विद्वान, शिक्षा समाज द्वारा संचालित होती है,ऐसा न मानकर उसे स्वतन्त्र रूप देते हैं,और शिक्षा के उद्देश्यों को शिक्षा प्रक्रिया में सन्निहित करते हैं। बाह्य सामाजिक ज्ञान शिक्षा को सामग्री देने का काम करता है, परन्तु उसके लिए मापदण्ड नहीं बन पाता । यदि शिक्षा का उद्देश्य शिक्षा प्रक्रिया में निहित है तो शिक्षा किसी बाह्य उद्देश्य से प्रभावित नहीं होगा वह स्वयं उद्देश्य होगा । जीवन एवं शिक्षा एक दूसरे के पहलू हैं । यदि जीवन विकास है, तो शिक्षा भी विकास है, इसलिए अन्तिम उद्देयश्य शिक्षा का विकास करना होगा। चूंकि विकास का कोइ अन्त नहीं होता इसलिए शिक्षा का भी अन्त नहीं होता है। यह उद्देश्य भी स्पष्ट नही है क्योंकि विकास एवं प्रगति को एक समान माना जाता है। परन्तु विकास एवं प्रगति को एक समान मानना भ्रम है। क्योंकि रोगी के बीमारी का विकास होने पर उसे रोगी की प्रगति नहीं कहा जा सकता। इस विचार धारा की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह वर्तमान विकास को ही अन्तिम उद्देश्य मानता है। यह विचार धारा भविष्य की ओर नहीं देखता, जो इसकी कमी है।बुरा कार्य अन्त की ओर और अच्दा कार्य विकास की ओर ले जाता है, इसलिए अच्छे कार्यों के विषय में ही सोचना चाहिए। शिक्षा का उचित उद्देश्य होना चाहिए, जो बालक को आजीवन विकास के पथ पर ले जाये।

11.9.2 निश्चित और समीवपर्ती उद्देश्यः- आज तक शिक्षा के बहुत से उद्देश्यों का वर्णन हो चुका है, और अब भी हो रहा है। नेशनल एजुकेशन एसोसिएशन (संयुक्त राज्य) ने शिक्षा के कुछ उद्देश्य बताये है, जो अग्रलिखित है- (1) पढ़ना लिखना और गणित (2) स्वास्थ्य (3) गृह सदस्यता (4) व्यवसाय (5) राजनैतिक ज्ञान (6) अवकाश के समय का उपयोग एवं (7) नैतिक चरित्र।

नेशनल एजुकेशन एसोशिएशन द्वारा बताये गये उपर्युक्त उद्देश्य माध्यमिक उद्देश्य कहे जा सकते हैं, क्योंकि समीपवर्ती उद्देश्य तो प्रत्येक पग पर निश्चित करना पड़ता है, इसी कारण समीपवर्ती उद्देश्य की व्याख्या करना कठिन होता है। शिक्षा अमूर्त विषय होता है, इसीलिए इसके उद्देश्यों का निर्धारण नहीं हो पाता है। आन्तरिक मूल्य के समर्थकों के अनुसार 12 वर्ष की अवस्था तक के छात्र छात्राओं के पाठ्य सामग्री मे बहुत कम परिवर्तन करना चाहिए, हालांकि लिंगभेद, भौगोलिक एवं सामाजिक स्थिति के कारण उनके पाठ्य सामग्री में परिवर्तन आवश्यक होता है। चूंकि इस अवस्था के बाद ही विशेष योगरूता की अवस्था आती है, इसीलिए उस समय उनके पाठ्य सामग्री में परिवर्तन तथा संशोधन आवय होना चाहिए। यदि राज्य व्यक्ति की व्यक्गित भलाई का ध्यान रख कर नियमपूर्वक पाठ्यक्रम का निर्माण कर सके

तो भी राज्य का अधिकार होता है कि पाठ्यक्रम के निर्धारण मे हस्तक्षेप करे, अन्यथा राज्य को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नही हैं।

आदर्शवादियों के लिए सत्यम, शिवम् एवं सुन्दरम् अंतिम एवं मुख्य मूल्य होता है। उनका विचार है कि शिक्षा द्वारा इनकी प्राप्ति होनी चाहिए । जिस शिक्षक ने उक्त मूल्यों को प्राप्त कर लिया है, वह अपने छात्रों को उन मूल्यों की प्राप्ति सरलता पूर्वक करा सकता है। आदर्शवादियों का विचार है कि शिक्षक को बालक पर अपनी बात थोपना नहीं चाहिए, बल्कि सत्य बोलकर, दूसरों का कल्याण करके तथा सौन्दर्य की उपासना करके सत्यम् शिवम् एवंसुन्दरम् की प्राप्ति के साधन बताना चाहिए। कनिघम का मानना है कि बुद्धि को अनुशासित करने के लिए विषयों को ध्यान में रखना चाहिए। इसलिए विषयों का चयन बहुत सोच समझ कर करना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

8. धार्मिक व्यक्तियों के लिए शिक्षा का क्या उद्देश्य होता है?

....

....

9. नेशनल एजूकेशन एसोसिएशन (संयुक्त राज्य) द्वारा बताये गये शिक्षा के तीन उद्देश्य बताइये।

....

....

10. आदर्शवादियों के लिए अंतिम मूल्य क्या होता है।

....

....

11.10 शिक्षा एवं मानव मूल्य

शिक्षा और मानव मूल्य पर विचार करते समय हमारे समक्ष यह प्रश्न उपस्थित

होता है कि आखिर युग मूल्य बने कैसे? अथवा एक काल विशेष में एक समाज के अन्तर्गत वे कौन से कारक हैं जो मूल्य के बनाने में सहायता करते हैं? इन प्रश्नोंके उत्तर हेतु हमें व्यक्ति, समाज तथा शिक्षा इन तीनों की समस्त गतिविधियों को देखना तथा उस पर विचार करना होगा।। विद्यार्थी वह बीज है जो सम्पूर्ण मूल्यों के विकास को अपने अन्दर सँजोये हुए है तथा शिक्षा वह परिवेश है जो इस बीज को खाद -पानी देकर विकसित होने के लिए सुअवसर प्रदान करती है। इन दोनों के योगदान से ही मूल्य का उद्‌भव संभव हो सकता है। शिक्षा समाज की सीढ़ी होती है। व्यक्ति इस शिक्षा रूपी सीढ़ी पर पैर रखकर अपने संस्कारों को सँवारता है तथा शिक्षा को दिशा प्रदान करता है। प्रायः समाज के सभी व्यक्तियों द्वारा महान व्यक्तियों के जीवन के उद्देश्य को स्वीकार किया जाता है। व्यक्ति और समाज के कल्याण सम्बन्धी बातों का निर्धारण व्यक्ति, समाज और शिक्षा तीनों मिलकर करते हैं।

भारत में धर्मनिरपेक्षता की बात कहकर मूल्य निरपेक्ष शिक्षा का नारा दिया गया। अस्तु आज देश में विघटनकारी तत्व पहले से अधिक विद्यमान हैं। आज का युवा वर्ग विध्वंसात्मक कार्यों में संलिप्त है। वर्तमान शिक्षा पद्धति मानव में शोक, हर्ष, राग द्वेष आदि उत्पन्न कर रही है। इसी के कारण मानव मूल्यों में गिरावट आ रही है। आज की शिक्षा शिक्षार्थियों में न तो अनुशासन और न ही स्वाध्याय का विकास कर पा रही है। शिक्षार्थी अपना कर्तव्य नहीं करना चाहता। शिक्षा आदर्श तथा यथार्थ में अन्तर करती हैं। अन्ततः बालक जब आदर्शों को यथार्थता से भिन्न पाता है तो असहाय हो जाता है। मूल्यों और आज की शिक्षा प्रणाली में कोई समन्वय नहीं दिखाई देता । शिक्षार्थियों के परीक्षण का मापदण्ड, नोट्‌स, लेक्चर तथा प्रश्नोत्तर को रटना कौशल हो गया है। शिक्षार्थी अपने अस्तित्व को नहीं पहचान पा रहा है। शिक्षा जगत के लिए यह गिरता हुआ मूल्य एक चुनौती है। इसे सुधारने के लिए शिक्षा पद्धति में सुधार करना ही होगा।

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे व्यक्ति अपनी प्राथमिकताओं, अपने कर्तव्य, अपने कार्य के प्रतिनिष्ठा तथा अपने स्व को समझ सके। तभी उसके अन्दर मानव मूल्य को विकसित करने की क्षमता आयेगी। यह पाठ्‌यक्रम, पाठ्‌यवस्तु तथा परीक्षा व्यवस्था से जुड़ी हुई समस्या है वर्तमान समय में ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें व्यक्ति सत्य आधारित अहिंसा द्वारा प्रेमपूर्वक अपने जीवन का निर्वहन कर सके। शिक्षा द्वारा ऐसे व्यक्ति बनाने चाहिए जो स्वयं अपनी इच्छा से शाश्वत मूल्यों का पालन कर सके और जिससे व्यक्ति तथा समाज का भला हो सके। यह तभी संभव

है जब शिक्षा द्वारा व्यक्ति की आत्मा को जागृत कर दिया जाये । इसके लिए आध्यात्मिक शिक्षा की आवश्यकता होगी। आज के वैज्ञानिक विकास के कारण आध्यात्म की जड़े कमजोर हो गई हैं। विज्ञान ने आध्यात्म को पंगु सा बना दिया है। आध्यात्म को शिक्षा में स्थान देना ही होगा। तभी मूल्य पुनः स्थापित हो सकते हैं।अन्यथा आज की जो शिक्षा व्यवस्था है। उससे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण करना बहुत कठिन है।

भारतीय संविधान को नैतिक मूल्यों का अमूल्य आधार कहा जाता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में बताये गये मूल्यों को शिक्षा द्वारा ही शिक्षार्थियों के जीवन में उतारा जा सकता है। प्रजातन्त्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, न्याय, सहिष्णुता, व्यक्ति की गरिमा, विचार तथा अभिव्यक्ति आदि मूल्य हमारे संविधान की प्रस्तावना में बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त इमानदारी, उपकार, विनम्रता, अहंकार, निःस्वार्थता, समभाव, मन, वचन, सद्कर्म जैसे मूल्यों को शिक्षार्थियों के जीवन में उतारना है। इसके बिना व्यक्ति बिल्कुल असहाय होता है। इसलिए शिक्षार्थियों को मूल्यपरक शिक्षा दी जानी चाहिए। मूल्य को बताने के लिए केवल उपदेश का ही सहारा नहीं लेना चाहिए, बल्कि इसके लिए चिन्तन, अनुभूति तथा क्रियान्विति की आवश्यकता होती है।

युवकों में मूल्यों का विकास करने हेतु नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा की प्रक्रिया का अभिविन्यास करने का प्रयास किया। युवकों को यही अनुभव कराने का प्रयास किया किस प्रकार वे शोषण एवं असुरक्षा को रोक सकते हैं। शिक्षार्थियों में सत्य, सहायोग, कर्तव्य परायणता सम्बन्धी विकास करने के लिए अनुकूल शिक्षा देने की बात कही गई है। माता-पिता का व्यवहार मूल्य सम्बन्धी होना चाहिए क्योंकि बालक सर्वप्रथम माता-पिता से ही शिक्षा ग्रहण करता है। पाठ्यक्रम में नैतिकता मूल्य सम्बन्धी अंशों का विस्तार करने चाहिए तथा पाठ्यपुस्तकों में भी नैतिक मूल्य सम्बन्धी अंश जोड़ना चाहिए।

विद्यालयों में शिक्षार्थी के अधिक से अधिक अनुभवों से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए धार्मिक उत्सवों का आयोजन, महापुरुषों की जयन्तियां, समय-समय पर संगोष्ठी तथा भाषण आदि का आयोजन करना चाहिए। शिक्षक सभी शिक्षार्थियों का आदर्श होता है। इसलिए शिक्षक को अपने आदर्श के प्रति सजग रहना चाहिए। शिक्षक के सदाचरण का प्रभाव शिक्षार्थियों पर पड़ता है शिक्षक के अन्दर उन मूल्यों को विकसित होना चाहिए जिन मूल्यों को वह प्रदान करना चाहता है।

समाज में मूल्यों का ह्रास हो रहा है यह हमारी शिक्षा व्यवस्था के लिए एक चुनौती है। इसके लिए शिक्षा में सुधार करना आवश्यक है। तभी मूल्यों का विकास होगा। शिक्षा राष्ट्र एवं समाज के विकास का एक प्रमुख साधन है । इसी के द्वारा

मनुष्य के शिवत्व और विनाश दोनों स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं कुशिक्षा व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र तीनों को हानि पहुँचाती है।

विज्ञान और तकनीकी विस्तार के कारण ज्ञान तो बढ़ रहा है। किन्तु बुद्धि तथा विवेक संकुचित होता जा रहा है। इस कारण व्यक्ति का पतन हो रहा है। जनसंख्या विस्फोट के कारण छात्र संख्या बढ़ रही है, गुणवता घट रही है। समाज में अराजकता फैल रही है। मानव भयावह स्थिति में पहुँच गया है। संहारक यन्त्रों का विकास विज्ञान की देन है। 'न्यूक्लियर बम' के कारण सारा विकास, विनाश के कगार पर खड़ा है। शिक्षा ही इन सभी समस्याओं का समाधान कर सकती है। अतः शिक्षा की गुणवत्ता पर जोर दिया जाना चाहिए। विज्ञान के साथ-साथ आध्यत्मिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए जिससे विज्ञान और मानवीय मूल्य दोनों का विकास हो सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

11. समाज के विकास सम्बन्धी बातों का निर्धारण कौन करता है?

....

....

12. वर्तमान शिक्षा कैसी होनी चाहिए?

....

....

13. संविधान की प्रस्तावना में बतायें गये तीन मूल्य बताइये।

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

14. एक शिक्षक मूल्य शिक्षा किस स्थिति में प्रदान कर सकता है?

....

....

11.11 सारांश

इस इकाई में मूल्य का अर्थ एवं गिरावट का वर्णन किया गया और बताया गया कि मूल्य ऐसी आचरण संहिता होती है, जिससे व्यक्ति क व्यक्तित्व का विकास होता है, परन्तु वर्तमान समय में व्यक्ति के अत्याधिक स्वार्थी होने के कारण हर क्षेत्र में मूल्य का ह्ास हो रहा है। इसके बाद मूल्यो का प्रकार एवं उनकी श्रेणियों को स्पष्ट किया गया और बताया गया कि मूल्य दो प्रकार के होते है और उनकी दो श्रेणियां निम्न एवं उच्च होती है। शिक्षा क उद्देश्य को भी स्पष्ट किया गया और सामान्य एवं अंतिम उद्देश्य तथा निश्चित एवं समीपवर्ती उद्देश्य दो प्रकार के उद्देश्यों को बताया गया। अन्त में इस इकाई में शिक्षा एवं मानव मूल्य का वर्णन किया गया और बताया गया कि शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार हो कि बालक सत्य एवं अहिंसा के द्वारा प्रेम पूर्वक जीवन निर्वाह करना सीख सके। वह स्वयं अपनी इच्छा से मूल्यों को अपनाये ताकि उसका एवं समाज दोनों का कल्याण हो सके। इसके लिए व्यक्ति के आत्मा को जागरुक होना आवश्यक है। इसलिए शिक्षा में आध्यात्म को रखना चाहिए, तभी वर्तमान शिक्षा भारतीय संस्कृति के मूल्यों को संरक्षित करने में समर्थ होगी।

11.12 अभ्यास कार्य

1. मूल्य किसे कहते है? स्पष्ट कीजिए।

2. अपने अनुभव के आधार पर बताइये कि वर्तमान समय में मूल्यों का ह्ास हो रहा है या नहीं? यदि हाँ तो कैंसे?

3. मूल्यो के प्रकार एवं श्रेणियों को स्पष्ट कीजिए।

4. शिक्षा के उद्देश्यों को विश्लेषित कीजिए।

5. शिक्षा एवं मानव मूल्य की विवेचना कीजिए।

11.13 बोध प्रश्न के उत्तर

1. मूल्य ऐसी आचरण संहिता या सद्‌गुणों का समूह होता है जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करता है, इसके अन्तर्गत व्यक्ति की धारणाएं विचार, विश्वास, मनोवृत्ति एवं आस्था आदि सम्मिलित होती है।

2. व्यक्ति द्वारा अपने सामाजिक जीवन को नियमित करने की दृष्टि से ।

3. भौतिक मूल्यों को

4. इस बात पर गहरी चिन्ता प्रकट की जा रही है कि जीवन के लिए आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और मूल्यों पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की जरुरत है, जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त साधन बन सके।

5. पशुओं एवं मनुष्यों के समान इच्छाओं पर आधारित मूल्य को निम्न कहा जाता है।

6. बौद्धिक इच्छाओं को उच्च मूल्य कहा जाता है। (क) व्यक्ति के चारित्रिक विकास एवं उन्नति के लिए (ख) व्यक्ति एंव समाज के विकास के लिए (ग) सांस्कृतिक संरक्षण एवं सम्बर्द्धन के लिए।

7. (क) व्यक्ति के चारित्रिक विकास एवं उन्नति के लिए ।

(ख) व्यक्ति एवं समाज के विकास के लिए।

(ग) संस्कृति के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए।

8. ईश्वर ही विश्व स्रष्टा है, इस बात का बोध कराना।

9. (क) स्वास्थ्य (ख) राजनतिक ज्ञान (ग) नैतिक चरित्र।

10. सत्यम् शिवम् एवं सुन्दरम् ।

11. समाज के कल्याण सम्बन्धी बातों का निर्धारण शिक्षा, समाज तथा व्यक्ति तीनों मिलकर करते हैं ।

12. वर्तमान शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे व्यक्ति सत्य तथा अहिंसा द्वारा प्रेम पूर्वक जीवन का निर्वाहन कर सके।

13 (क) प्रजातन्त्र (ख) समाजवाद (ग) धर्म निरपेक्षता

14. जब उसमे स्वयं अच्छे मूल्य उत्पन्न होंगे, क्योंकि शिक्षक छात्रों का प्रेरणा स्रोत होता है।

इकाई 12 स्वतन्त्रता तथा अनुशासन

संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 स्वतन्त्रता तथा अनुशासन का महत्व

12.3.1 स्वतन्त्रता का महत्व

12.3.2 अनुशासन का महत्व

12.4 स्वतन्त्रता तथा अनुशासन का अर्थ

12.4.1 स्वतन्त्रता का अर्थ

12.4.1.1 शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्रता का अर्थ

12.4.2 अनुशासन का अर्थ

12.4.2.1 शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन का अर्थ

12.5 अनुशासन और व्यवस्था में अन्तर

12.5.1 दमनात्मक अनुशासन

12.5.2 प्रभावात्मक अनुशासन

12.5.3 मुक्तात्मक अनुशासन

12.6 अनुशासन के तीनों सिद्धान्तों की समीक्षा

12.7 सारांश

12.8 अभ्यास कार्य

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.1 प्रस्तावना

शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्रता एवं अनुशासन दो मनोवृत्तियाँ हैं, जिनका प्रयोग बहुत दिनों से होता चला आ रहा है । अनुशासन एवं स्वतन्त्रता के विषय में कुछ विरोधी मत प्रचलित हैं । कुछ शिक्षा शास्त्री यह मानते हैं कि विद्यालय तथा समाज में स्वतन्त्रता के कारण उच्छशृंखलता आती है, और अनुशासन में बाधा पड़ती है ।

लेकिन कुछ शिक्षा शास्त्री इसे सही नहीं मानते । स्वन्त्रता का तात्पर्य आत्म नियन्त्रण से है । यह एक प्रकार की भावना है, जिसमें व्यक्ति एक दूसरे का ध्यान रखता है। इसका फल अनुशासन होता है । अर्थात अनुशासित रहकर ही स्वतन्त्रता का फल प्राप्त किया जा सकता है । इस प्रकार स्वतन्त्रता एवं अनुशासन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। समाज एवं शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन एवं स्वतन्त्रता दोनो का विशेष महत्व है । दोनो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए परम आवश्यक हैं। नियमों का पालन करना अनुशासन तथा, मुक्त रूप से विचार करना, खोज एवं आविष्कार करना स्वतन्त्रता है । शिक्षा का लक्ष्य व्यक्तित्व का विकास करना हे, और इसके लिए स्वतन्त्र विचार एवं क्रिया के लिए एक व्यवस्था एवं परिस्थिति के अनुकूल व्यवहार व आचरण की आवश्यकता होती है, और यह अनुशासन द्वारा ही सम्भव है।

ए.एन.ह्वाइट हेड का विचार है कि अनुशासन एवं स्वतन्त्रता में कोई विरोध नहीं है। बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिए दोनों ही आवश्यक हैं । नन महोदय ने कहा है कि 'अनुशासन आवेगों तथा शक्तियों के नियन्त्रण में होता है और इसी के द्वारा व्यक्ति को कार्य करने की अधिक क्षमता प्राप्त होती है ।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि अनुशासन एवं स्वतन्त्रता में घनिष्ठ सम्बन्ध है, दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू है । जिस प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर बेकार है, तथा शरीर के अभाव में आत्मा का अस्तित्व प्रगट नहीं हो पाता, उसी प्राकार अनुशासन एवं स्वतन्त्रता भी एक दूसरे पर निर्भर है । बिना स्वतन्त्रता के बाहर से थोपा गया अनुशासन बेकार है । वास्तव में स्वतन्त्रता पर आधारित अनुशासन ही सच्चा अनुशासन है जो स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है । इस इकाई में अनुशासन एवं व्यवस्था का वर्णन किया गया है और उनके मध्य अन्तरों को स्पष्ट किया गया है। व्यवस्था के तीनों रूपों की व्याख्या एवं समीक्षा भी की गयी है ।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगें कि-

- ✦ अनुशासन एवं स्वतन्त्रता के सम्बन्धों की विवेचना कर सकेंगे ।
- ✦ व्यवस्था और अनुशासन के अन्तर को बता सकेगें ।
- ✦ व्यवस्था के प्रकारों की विवेचना कर सकेगें ।
- ✦ व्यवस्था के प्रकारों में से कौन सी व्यवस्था छात्रों के लिए अच्छी है, बता

सकेगें ।

12.3 स्वतन्त्रता तथा अनुशासन का महत्व

12.3.1 स्वतन्त्रता का महत्व

बालक के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास हेतु स्वतन्त्रता अति आवश्यक है। स्वतन्त्रता के बिना बालक की व्यक्तिगत रूचियों, रूझानों,आवेगों तथा ेइसकी शारीरिक, मानसिक,नैतिक एवं अन्य शक्तियों का विकास नहीं हो सकता । अक्सर देखा गया है कि जब किसी बालक को नियन्त्रित परिस्थिति में रखकर कोई कायर्य करने को कहा जाता है, तो वह कार्य उसके लिए एक कठिन कार्य हो जाता है । बालक उस कार्य को लोगों के कहने के कारण करता तो अवश्य है,परन्तु उसे उस कार्य में कोई रूचि नहीं होती है । इसके विपरीत यदि किसी बालक को उसकी इच्छानुसार कोई कार्य करने की स्वतन्त्रता दे दिया जाय तो बालक उस कार्य को रूचि के साथ करता है । इसका तात्पर्य यह है कि स्वतन्त्रता की परिस्थिति में बालक किसी भी कार्य को रूचि पूर्वक करता है । स्वतन्त्रता से बालक को स्वतन्त्र चिन्तन का अवसर मिलता है । इसी कारण रूसों ने बाध्यबल एवं बंधन को अस्वीकार करके बालकों की पूर्ण स्वतन्त्रता पर बल दिया है

12.3.2 अनुशासन का महत्व

बालक के सम्पूर्ण विकास के लिए स्वतन्त्रता के साथ-साथ अनुशासन भी अति आवश्यक है । यदि बालक को उसकी प्रकृति के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक विकसित होने के अवसर दे दिया जाय तो वह विकास तो क्करेगा लेकिन, परन्तु उनमें ऐसे गुणों का विकास नहीं होगा जो आदर्श समाज के लिए आवश्यक होता है । स्वतन्त्रता प्राप्त बालक अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए सामाजिक नियमों की अवहेलना करता रहेगा जिसके फलस्वरूप सामाजिक जीवन अस्त व्यस्त हो जायेगा । वर्तमान युग में बालक को सच्चा व्यक्ति बनाने के लिए उन गुणों एवं आदतों का विकास करना आवश्यक है, जो आदर्श समाज के लिए आवश्यक है । इस हेतु बालकों का अनुशासन प्रिय होना आवश्यक है। अनुशासन के द्वारा बालक की मूल प्रवृत्यात्मक इच्छाओं एवं आवेगों को सुधारकर ऐसे गुणों का विकास किया जा सकता है, जिससे उसका व्यवहार समाज के स्वीकृत मानदण्डों के अनुसार हो जाये। प्राचीन काल में अनुशासन का इतना अधिक महत्व था कि इसे शिक्षा-जगत में साधन नहीं अपितु

साधना मान लिया गया था ।

12.4 स्वतन्त्रता तथा अनुशासन का अर्थ

12.4.1 स्वतन्त्रता का अर्थ

शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है। बालक के विकास के लिए स्वतन्त्रता का होना आवश्यक है।

सामान्यतः स्वतन्त्रता का अर्थ किसी प्रकार का बन्धन न होने से लिया जाता है । स्वतन्त्रता का अंग्रेजी रूपान्तर फ्रीडम का शाब्दिक अर्थ भी यही होता है । परन्तु स्वतन्त्रता का शाब्दिक अर्थ इससे भिन्न है । स्वतन्त्रता का शाब्दिक अर्थ है- स्व + तन्त्र अर्थात अपना शासन। अर्थात स्वतन्त्रता वह स्थिति है ,जिसमें व्यक्ति स्व के शासन में रहता है।

स्वतन्त्रता वास्तव में एक सामाजिक तथ्य होता है क्योंकि अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने हेतु इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि अपनी स्वतन्त्रता से किसी अन्य की स्वतन्त्रता बाधित न हो । स्वतन्त्रता की स्थिति में नियमों का पालन आवश्यक होता है और स्वतन्त्रता से लाभ उठाने के लिए नियम एवं नियन्त्रण का होना आवश्यक माना जाता है । इस सम्बन्ध में रास का कहना है कि आत्मानुशासन को ही सच्चे अर्थों में स्वतन्त्रता कहा जा सकता है । स्वतन्त्र व्यक्ति वही है जिसे यह ध्यान है कि जिस कानून का मै पालन कर रहा हूँ वह मैने ही बनाया है । रूसों का कहना है कि- वह व्यक्ति स्वतन्त्र है जो अपने समाज की इच्छाओं का पालन करता है ।

12.4.1.1 शिक्षा के क्षेंत्र में स्वतन्त्रता का अर्थ

शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्रता शब्द का प्रयोग मुख्यतः दो रूपों में होता है । कुछ विचारक बच्चों को किसी प्रकार के बन्धन में नहीं रखना चाहते हैं। वे बच्चों को निश्चित पाठ्यक्रम एवं विद्यालय की सीमाओं से बांधना नहीं चाहते हैं । वे बच्चों को अपनी रूचि, रूझान और इच्छानुसार कुछ भी और कहीं भी सीखने की स्वतन्त्रता देते हैं। इस स्थिति में औपचारिक शिक्षा का विधान नहीं हो सकता,इसलिए इस प्रकार की स्वतन्त्रता का समर्थन नहीं किया जा सकता है। इसलिए कुछ विद्वान बच्चों की पूर्ण स्वतन्त्रता के हिमायती नहीं हैं क्योंकि उनका मानना है कि पूर्ण स्वतन्त्रता से बच्चे

असामाजिक हो सकते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्रता का दूसरा अर्थ है, बच्चों को अपनी रूचि, रूझान एवं इच्छानुसार विकास करने के पूर्ण अवसर प्रदान करना, परन्तु इस सावधानी के साथ कि उससे दूसरे छात्रों को किसी प्रकार की छति न हो । अर्थात प्रत्येक छात्र अपना विकास करने के लिए स्वतन्त्र ही, परन्तु उसे दूसरे के विकास में बाधा डालने की स्वतन्त्रता न हो । आज शिक्षा के क्षेत्र में स्वतन्त्रता का अर्थ इसी रूप में ही लिया जाता है।

12.4.2 अनुशासन का अर्थ

सामान्यतः अनुशासन का अर्थ नियमों के पालन से लिया जाता है। परन्तु अनुशासन का वास्तविक अर्थ इससे भिन्न होता है 'अनुशासन' संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है - आज्ञा या आदेश । अनुशासन के अंग्रेजी पर्याय 'डिसिप्लिन' का शाब्दिक अर्थ भी होता है - आदेश या नियन्त्रण को मानना । प्रारम्भ में अनुशासन एवं डिसिप्लिन दोनों शब्दों का प्रयोग आदेश पालन अथवा नियन्त्रण में रहने से लिया जाता था, परन्तु वर्तमान समय में अनुशासन का अर्थ इससे अलग रूप से लिया जाता है। आज अनुशासन शब्द का अर्थ व्यापक रूप में लिया जाता है और उसमें आन्तरिक प्रेरणा, आत्म नियन्त्रण, आत्मसंयम और आत्म व्यवहार को सम्मिलित किया जाता है ।

12.4.2.1 शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन का अर्थ

मध्यकाल तक अनुशासन एवं डिसिप्लिन शब्दों का अर्थ शिष्यों द्वारा गुरू के आदेशों का पालन करने अथवा उनके नियन्त्रण में रहने से लिया जाता था । परन्तु वर्तमान युग में अनुशासन का अर्थ छात्रों द्वारा विद्यालयी नियमों का पालन करने और समाज अनुकूल व्यवहार करने से लिया जाता है । वर्तमान समय में छात्रों पर विद्यालयी नियम थोपे नहीं जाते और न ही उन्हे समाजानुकूल व्यवहार करने के लिए बाध्य किया जाता है । वर्तमान समय में छात्रों को ऐसी परिस्थिति दी जाती है कि वे यह सब कार्य के लिए स्वयं सोचते हैं, वैसा करने के लिए स्वयं अपने अन्दर शक्ति का विकास करते हैं और इस प्रकार व्यवहार करते हैं। आज के विचारक इस स्थिति को स्वानुशासन की संज्ञा देते हैं और इसे ही सही अनुशासन कहते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

1.बालको के लिए स्वतन्त्रता क्यों आवश्यक है ?

....

....

2. बालकों को पूर्ण स्वतन्त्रता देने की बात किसने की है ?

....

....

3. प्राचीन काल में अनुशासन को क्या माना गया था ?

....

....

4. स्वतन्त्रता का क्या अर्थ है ?

....

....

5. रूसो के अनुसार स्वतन्त्र व्यक्ति किसे कहेगें ?

....

....

6. अनुशासन का क्या अर्थ होता है ?

....

....

12.5 अनुशासन तथा व्यवस्था में अन्तर

सामान्यतः लोग अनुशासन एवं व्यवस्था में कोई भेद नहीं समझते, परन्तु इनमें बहुत अन्तर होता है । व्यवस्था एक वाह्य वस्तु है,परन्तु अनुशासन आन्तरिक होता है । व्यवस्था का अर्थ केवल नियम पालन से होता है, जबकि अनुशासन में

नियम पालन के साथ-साथ नियम पालन में व्यक्ति का विश्वास भी शामिल होता है, जबकि अनुशासन का सम्बन्ध वर्तमान एवं भविष्य दोनों से होता है। व्यवस्था वाह्य नियन्त्रण द्वारा कायम होती है, जबकि अनुशासन व्यक्ति की अन्तःकरण से नियन्त्रित होता है, इसी कारण जहाँ अनुशासन होता है, वहाँ व्यवस्था अवश्य होती है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जहाँ व्यवस्था हो वहाँ अनुशासन भी हो । अनुशासित व्यक्ति अपने अन्तःकरण से प्रभावित होकर समाजोनुकूल व्यवहार करता है, इसलिए उसके द्वारा कभी भी अव्यवस्था नहीं हो सकतीं व्यवस्था वाह्य नियन्त्रण द्वारा कायम की जाती है, अनुशासन के अभाव में वाह्य नियन्त्रण हटते ही वह समाप्त हो सकती है । इससे स्पष्ट होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि जहाँ व्यवस्था हो, वहाँ अनुशासन भी हो । अच्छे अनुशासन का अर्थ चरित्र में अनुशासन को उतारना तथा स्थायी रखना होता है ।

सन्त जेरेमिया के विचारों से प्रभावित होकर ईसाई मत के लोग बालक की उत्पत्ति पाप के कारण होती है, ऐसा मानते हैं । इसी कारण उसे दण्ड देकर शैतान के चंगुल से बचाकर ईश्वर की ओर लाना चाहते हैं। जेरेमियाँ हृदय को धोखेबाज तथा नीच मानता है और हृदय को काबू में करने के लिए दण्ड को उचित मानता है । कुछ सीमा तक मनोविज्ञान भी दण्ड देकर छात्रों में सद्गुण उत्पन्न करने को उचित मानता है । अनुशासन की समस्या का मूल कारण दर्शन एवं मान्यताएं हैं । आदर्शवादी तथा प्रकृतिवादी हमको विपरीत दिशा की ओर ले जाते हैं क्योकि एक अनुशासन को महत्व देता है तो दूसरा स्वतन्त्रता ाको ।

नार्मन मेकमन ने अपनी पुस्तक 'दी चाइल्ड पथ आफ फ्रीडम' तथा एडम्स ने अपनी पुस्तक 'माडर्न डेवलपमेंट इन एजूकेशनल प्रैक्टिस' में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का विश्लेषण करके निम्न तीन अनुशासन बताये हैं :-

1. दमनात्मक अनुशासन
2. प्रभावात्मक अनुशासन
3. मुक्तात्मक अनुशासन

12.5.1दमनात्मक अनुशासन

दमनात्मक व्यवस्था को मानने वाले शिक्षा शास्त्रियों नेकहा है कि बालक को अत्याधिक स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए। इस अनुशासन (व्यवस्था) के अन्तर्गत बाह्य शान्ति एवं व्यवस्था को बहुत महत्व दिया जाता है। स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने एवं चुलबुलाने आदि पर कठोर दण्ड दिया जाता है और अनुशासित रहना सीखाया जाता

है। इस अनुशासन को मानने वाले शायद ही आज मिले, परन्तु 17वीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप में इस अनुशासन का बहुत महत्व था। दमनात्मक (निरोध) व्यवस्था को मानने वालों का यह विश्वास जेरेमिया (Jermiah) के इस कथन में था जिसके अनुसार मनुष्य का हृदय धोखेबाज तथा दुष्ट होता है। जेरेमिया के अनुसार बालक को सुधारने के लिए दण्ड एवं भय का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। हम व्यवस्था के समर्थकों का विश्वास था कि -डण्डा छूटा और बालक बिगड़ा''। इस प्रकार प्राचीन यूरोप तथा भारत में केवल डण्डा ही शिक्षक की सहायक सामग्री समझी जाती थी।

दमनात्मक अनुशासन के पक्ष में तर्कः- दमनात्मक अनुशासन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. इस अनुशासन के विचारकों का मानना है कि बालकों को शिक्षित करने के लिए शारीरिक दण्ड सर्वोत्तम विधि है।

2. इन विचारकों का मानना है कि दण्ड देने से बालक अनुशासन में रहता है। इसलिए बालक को अनुशासित रखने के लिए शारीरिक दण्ड आवश्यक है।

3. शारीरिक दण्ड के डर से एक बालक दूसरे बालकों के साथ सामाजिक व्यवहार करने लगता है।

4. इस अनुशासन के विचारकों का मानना है कि भय के बगैर प्रीत नहीं होती इसलिए बालक शिक्षा तभी प्राप्त करेगा, जब उसे अपने गुरुजी का भय व्याप्त होगा।

दमनात्मक अनुशासन के विपक्ष में तर्कः- दमानात्मक अनुशासन के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिया जा सकता है-

1. शाारीरिक दण्ड से बालक में विरोध की भावना आती है और वह बागी बन जाता है।
2. शाारीरिक दण्ड के कारण बालक पढ़ाई छोड़ देता है।
3. दण्ड के भय से बालक के व्यक्तित्व का विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता है।
4. दण्ड के भय से बालक जो कुछ सीखता है, वह विचलित होकर भूल जाता है।
5. दण्ड देने के कारण बालक शिक्षक को अपना शत्रु मानने लगता है।

12.5.2 प्रभावात्मक अनुशासन

इस अनुशासन को मानने वाले शिक्षाशास्त्रियों का विचार है कि बिना किसी

दण्ड के ही शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव छात्रों पर पड़ना चाहिए और उनका चरित्र अच्छा बन जाना चाहिए। अपने छात्रों पर प्रभाव डालने वाला शिक्षक महान आदर्शों से प्रेरित, चलता-फिरता सद्‌गुणों का पिण्ड अर्थात् गुणवान बालक को अपने स्कूल से समाज में भेजता है। गुणवान एवं आदर्शवनबालक उत्पन्न करने वाला स्कूल (इंग्लैण्ड का पब्लिक स्कूल) प्राचीन काल में रहे। इस अनुशासप को मानने वाले आर्नल्ड, विंग आदि प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रकार का अनुशासन (व्यवस्था) बालकों को अन्तर्मुखी एवं नकलची बना देती है और उनकी सृजनात्मकता को कुंठित कर देती है।

प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष में तर्कः- प्रभावात्मक अनुशासन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिया जा सकता है-

1. इस अनुशासन में बालक अपने शिक्षक का अनुकरण करके उनके अनुसार कार्य करता है।

2. इस प्रकार के अनुशासन में अत्याधिक स्वतन्त्रता तथा अत्यधिक कठोरता के बीच का रास्ता चुना जाता है। इससे बालक सुचारु रूप से शिक्षा ग्रहण करता है।

3. इस प्रकार के अनुशासन में शिक्षा की प्रक्रिया सुचारु रूप से चलती है, क्योंकि इसमें शिक्षक एवं छात्र का सम्बन्ध प्रेम एवं सहानुभूति पर आधारित होती है।

4. इस अनुशासन में बालक प्रभाव द्वारा स्वयं अनुशासन में रहता है।

प्रभावात्मक अनुशासन के विपक्ष में तर्कः- प्रभावात्मक अनुशासन के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिया जा सकता है-

1. इस अनुशासन में शिक्षक का मुख्य स्थान होने के कारण वह बालक के चरित्र का निर्माणकर्त्ता समझने लगता है।

2. इस प्रकार के अनुशासन में बालक अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित नहीं हो पाता है।

3. इसमें बालक शिक्षक के प्रति अच्छी श्रद्धा रखने के कारण स्वतन्त्ररूप से चिन्तन, मनन एवं कार्य नहीं कर सकता।

4. वर्तमान समय मे आदर्श शिक्षक की कमी के कारण, इस प्रकार की अनुशासन कोरी कल्पना है।

वर्तमान समय में ऐसे शिक्षकों की संख्या बहुत कम है जो अपने क्रिया-कलाप से बच्चों को प्रभावित कर सकें। इसलिए इस प्रकार के अनुशासन की केवल कल्पना की जा सकती है।

12.5.3 मुक्तात्मक अनुशासन

इस अनुशासन (व्यवस्था) को मानने वाले शिक्षा शास्त्रियों का विचार है कि बालक को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देनी चाहिए। बालक को स्वतन्त्रता देने से ही उसका विकास ठीक प्रकार से होगा। इसी कारण इसके समर्थक बालक को स्वच्छन्द एवं सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त रखना चाहते हैं। उनके लिए मूल प्रवृत्तियों का आदेश ही अच्छा आदेश होता है। इन लोगों के अनुसार बालक जन्म से अच्छा होता है, जैसा कि रास ने कहा है कि 'बालक जन्म से अच्छा होता है, परन्तु समाज उसे खराब कर देता है।' मनोवैज्ञानिक वुड्सवर्थ ने कहा है कि 'बालक दैवीय गुणों वाला होता है। प्रकृतिवादी दर्शनिक रूसों तथा हरवर्ट स्पेन्सर ने मोक्षण व्यवस्था को सबसे अच्छा माना है। इस व्यवस्था के लोग इस बात पर जोर देते हैं कि बालकों को उनकी नैसार्गिक, रूचियों, प्रवृत्तियों एवं भावनाओं के अनुसार विकास करने की पूरी स्वतन्त्रता देनी चाहिए, ताकि उनको आत्म प्रदर्शन के सर्वाधिक अवसर मिल सकें तथा वे अपने व्यक्तित्व का यथोचित निर्माण कर सकें।

मुक्तात्मक अनुशासन के पक्ष में तर्कः- मुक्तात्मक अनुशासन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिया जा सकता है-

1. इस अनुशासन में बालक का स्वाभाविक विकास होता है और उसमें आत्मानुशासन की भावना पैदा होती है।

2. इस प्रकार के अनुशासन में बालक स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करता है और यदि वह कोई गलत कार्य करता है, तो प्रकृति उसे स्वयं दण्ड देती है।

3. चूंकि बालक जन्म से स्वतन्त्र होता है, इसलिए उसे कृत्रिम बन्धनों में जकड़ना बहुत बड़ा अन्याय है।

4. इस प्रकार के अनुशासन में बालक को अपनी प्राकृति के अनुसार विकसित होने का अवसर होता है, इससे उसके मन में किसी प्रकार की ग्रन्थियां नहीं उत्पन्न हो पाती और वह मानसिक रोगों से भी स्वतन्त्र रहता है।

मुक्तात्मक अनुशासन के विपक्ष में तर्कः- मुक्तात्मक अनुशासन के विपक्ष में निम्नलिखित तर्क दिया जा सकता है-

1. बालक की जन्मजात प्रवृत्तियां पाशविक होती है यदि बालक अपनी प्रवृत्ति अनुसार कार्य करेगा तो वह कार्य समाज विरोधी होगा।

2. बालकों को अच्छे एवं बुरे के अन्तर को समझने के लिए शिक्षक का हस्तक्षेप आवश्यक होता है।

3. प्रायः बालक स्वतन्त्रता को अधिकार समझ लेता है, इससे वह अपने कर्त्तय भूल जाता है।

4. बालकों में आत्मनियंत्रण एवं आत्मानुशासन का विकास करने के लिए स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जा सकता है।

बालक के व्यक्तित्व विकास के लिए स्वतन्त्रता आवश्यक है, परन्तु इसके लिए उसे अनियन्त्रित रूप से स्वतंत्र नहीं छोड़ा जा सकता। बालक को उसी सीमा तक स्वतंत्रता दी जा सकती है। जिस सीमा तक वह उचित निर्देशन द्वारा अपना विकास कर सके ।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

7. व्यवस्था एवं अनुशासन में दो अन्तर बताइये ?

(क) ....

(ख) ....

8. व्यवस्था के प्रकार बताइये ?

....

....

9. निरोध व्यवस्था के समर्थक किस बात पर विश्वास करते हैं?

....

....

10. प्रभाव व्यवस्था के दोष बताइये ।

....

....

11. प्रकृतिवादी दार्शनिक किस व्यवस्था को सबसे अच्छी व्यवस्था मानते हैं ?

....

....

12.6 अनुशासन के तीनों सिद्धान्तों की समीक्षा

उपर्युक्त तीनों व्यवस्थाओं (सिद्धान्तों) में से कौन सी व्यवस्था अच्छी है और कौन सी नही यह विचार करने पर ज्ञात होता है कि प्रथम व्यवस्था (निरोध) निम्न और वर्जित कोटि की व्यवस्था है, क्योंकि बालकों को दण्ड तभी दिया जाना चाहिए जब अन्य सभी उपाय विफल हो जाएं। मनोवैज्ञानिक फ्रायड एवं प्राचीन दार्शनिक तथा शिक्षक क्विन्तलियन ने बालकों को शारीरिक दण्ड देना अनुचित माना है। शारीरिक दण्ड से बचपन की दबी हुई बातें अचेतन मन में पहुँच जाती है, जो कभी भी निकलकर मस्तिष्क की स्नायुक्रिया को असन्तुलित कर देती है। परन्तु यदि बालक को दण्ड देने का कारण बता दिया जाए, तो दण्ड के हानिकारक प्रभाव से बचा जा सकता है। बालकों को सावधानी पूर्वक दण्ड दिया जा सकता है।

दूसरी अवस्था (प्रभाव) को मानने वाले विचारक बालक की सृजनात्मकता को नष्ट करने वाले होते हैं। वे बालकों को आज्ञाकारी बनना सिखाते हैं। चूंकि शिक्षक समाज का प्रतिनिधि होता है, इसलिए बालकपर शिक्षक का प्रभाव पड़ता ही है।यदि आदर्शयुक्त शिक्षक छात्रो को राष्ट्र के आदर्श एवं महान नेताओं की जीवनी बतायें तो विद्यालय आदर्श बनेगा ही साथ ही आदर्शवान छात्र भी होंगे। किन्तु आदर्शवान छात्र बनाने के चक्कर में छात्र कही अपूर्ण व्यक्तित्व वाला छात्र न बन जाय, इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होगा। प्रभाववादियों का मत है कि आदर्श चरित्र की ओर उन्मुख छात्र चरित्रवान होते हैं और वह आदर्श समाज की स्थापना करते है।

तीसरी अवस्था (मोक्षण) निरोध व्यवस्था की प्रतिक्रिया है। इस व्यवस्था के समर्थक बालक के पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्षपाती हैं। ये विचारक बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति को गलत चित्रित करते हैं। वे ये भूल जाते हैं कि बालक नित्य प्रति बहुत से कार्यो को दुहरा कर करते हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता देना उचित है या अनुचित ? कहना न होगा कि बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता देने से उसमें संकीर्ण दृष्टिकोण उत्पन्न हो सकता है और असमाजिक कार्य भी कर सकता है। इसके बावजूद स्वतन्त्रता बुरी वस्तु नहीं है, बालक को स्वतन्त्रता देनी चाहिए, किन्तु उतनी ही स्वतन्त्रता दी जाय जितनी बालक जीवन के लिए उपयोगी हो।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बालक को देश के आदर्श एवं महान नेताओं के चरित्र से अवगत कराकर निर्देशित स्वतन्त्रता के वातावरण में रखना चाहिए और सामाजिक कर्त्तव्यो से परिचित कराना चाहिए। बालकों को सोच समझकर कभी-

कभी दण्ड दिया जा सकता है, परन्तु दण्ड तभी दिया जाना चाहिए जब अन्य सभी उपाय बेकार हो जाय और बालकों को उतनी ही स्वतन्त्रता देनी चाहिए, जितना आवश्यक हो।

प्रजातान्त्रिक विद्यालयों की व्यवस्था और नेताओं द्वारा अनुशासित बालकों की स्वयं की व्यवस्था द्वारा अच्छे गुणों वाले बालक बनाया जा सकता है। इस बात का समर्थन कुर्टलेविन एवं लिप्पिट के कार्यों द्वारा भी हो चुका है। विभिन्न प्रकार के यूनियन एवं एसोाएिशन द्वारा छात्रों को नेतृत्व के गुणों का विकास करने का अवसर प्रदान करना चाहिए और राजनैतिक व्यवस्था के अनुसार ही विद्यालय की व्यवस्था भी करनी चाहिए।

बहुत से विद्वानों ने अनुशासन हीनता की समस्या के विषय पर विचार किया और अनुशासनहीनता दूर करने हेतु कुछ न कुछ सुझाव दिया, उन लोगों ने अनुशासनहीनता के जो कारण बताए उनमें निम्न बातें समान थीं जैसे -आदर्शहीनता, उद्देश्यहीनता एव दुर्व्यवस्थित समाज का दुर्व्यवस्थित विद्यालय। इन विद्वानों ने अनुशासनहीनता दूर करने के लिए कहा कि आदर्शों की खोज एवं पुनः स्थापना होना चाहिए।

अनुशासन एवं स्वतन्त्रता एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के सहयोगी हैं। नन् महोदय ने कहा हैं कि अच्छा काय करने की कोई विधि नही होती है और उस कार्य के आदर्श पहले से ही निश्चित नहीं हो सकते है। स्वतन्त्रता की स्थिति में ही व्यक्ति का अनशासित चरित्र पूर्ण रुप से दिखाई देता है और व्यक्ति द्वारा अपने नियमों का पालन करना ही स्वतन्त्रता होती है।

बालकों में विभिन्न गुणों का विकास स्वतन्त्र वातावरण के बिना नहीं किया जा सकता। जो बालक स्वतन्त्र वातावरण में शिक्षा प्राप्त करते हैं, उनमें ही संवेदनशीलता उत्पन्न होती है। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध दार्शनिक कृष्णमूति ने कहा है कि शिक्षा वाह्य एंव आन्तरिक जगत में सामंजस्य स्थापित करती है। संवेदनहीनता, दया, करुणा का अभाव एवं जड़ता वर्तमान शिक्षा की देन है। उनके अनुसार संवेदनशीलता चेतना का आधारभूत तत्व है जिसे पुस्तकीय ज्ञान से नही प्राप्त किया जा सकता। इस स्थिति मे शिक्षा की महत्ता इसी से है कि वह बच्चों में अनुशासन के साथ-साथ प्राकृतिक सौन्दर्य बोध विकसित करें।चूंकि संवेदनशीलता स्वतन्त्रता की स्थिति में आती है इसलिए शिक्षक का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह छात्रों को बाह्य एवं आन्तरिक

स्वतन्त्रता प्रदान करे, जिससे वे अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकें ।

व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए वैज्ञानिक बुद्धि एवं आध्यात्मिकता दोनों में सामन्जस्य होना आवश्यक है। स्वतन्त्रता एवं अनुशासन एक दूसरे के विरोधी न होकर एक दूसरे के पूरक है। व्यक्ति के जीवन में अनुशासन एवं स्वतन्त्रता दोनो का समावेश आवश्यक है। स्वतन्त्रता का अभिप्राय व्यक्तियो की इच्छा को ध्यान मे रखते हुए अपना कार्य करना है। स्वतन्त्रता मे निहित अनुशासन को प्राप्त किया जा सकता है जब व्यक्तियों में दूसरो के प्रति नम्रता, विवेकशीलता और वातावरण के प्रति सजगता हो । अनुशासन की स्थिति में ही स्वतन्त्रता उपजती है। वाहर से थोपी गयी अनुशासन चेतना को जड़ बना देती है। भय युक्त चेतना जीवन की सार्थकता को समझ सकती है। भय व्यक्ति में अनुकरण करने की प्रवृत्ति को बढ़ाती है और सोचने एवं सझने की क्षमता को कुठित करती है। अपने से श्रेष्ठात्ता को स्वीकारने का तात्पर्य चेतना एवं विवेक शीलता को समाप्त करना है। दार्शनिक कृष्णमूर्ति के अनुसार चेतना का तात्पर्य शारीरिक एवं मानसिक रूप से चेतन होने से है। शिक्षक का कार्य छात्रो में बाह्य एवं आन्तरिक चेतन होने से है। शिक्षक का कार्य छात्रों में बाह्य एवं आन्तरिक चेतना पैदा करना है। शिक्षा बालकों को विकास का अवसर प्रदान करती है। इसलिए छात्रों को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने कार्य करने का अवसर देना चाहिए ताकि उनका सर्वागीण विकास हो सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिये गये स्थान का प्रयोग कीजिए ।

(ख) अपने उत्तरों को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलान कीजिए।

12. बालकों को दण्ड कब दिया जाना चाहिए?

....

....

13. अनुशासनहीनता के तीन कारण बताइये ।

....

....

14. बालक के सर्वांगीण विकास के लिए क्या आवश्यक है?

....

....

12.7 सारांश

इस इकाई में व्यवस्था और अनुशासन का वर्णन एवं विश्लेषण किया गया है और व्यस्था एवं अनुशासान के अन्तर को स्पष्ट किया गया है। इसके बाद व्यवस्था के तीनों प्रकारों निरोध, प्रभाव एवं मोक्षण की व्याख्या की गई है। अंत में इस इकाई में तीनों व्यवस्थाओं की समीक्षा की गयी है। इस प्रकार इस इकाई से स्पष्ट होता है कि व्यवस्था वर्तमान से सम्बन्धित होती है और बाह्य नियन्त्रण द्वारा कायम होती है, जबकि अनुशासन वर्तमान एवं भविष्य दोनों से सम्बन्धित होती है और अन्तःकरण से नियन्त्रित होता है। बालकों को सोच समझकर कभी-कभी दण्ड दिया जा सकता है, परन्तु दण्ड तभी दिया जाना चाहिए जब अन्य सभी उपाय बेकार हो जाए और बालको को उतनी ही स्वतन्त्रता देनी चाहिए जितना आवश्यक है।

12.8 अभ्यास कार्य

1. व्यवस्था एवं अनुशासन के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

2. व्यवस्था के तीनों प्रकार को विश्लेषित कीजिए।

3. अपने अनुभव के आधार पर बताइये कि निरोध, प्रभाव एवं मोक्षण में से किस व्यवस्था को अपनाना चाहिए।

4. क्या आप महसूस करते है कि बालकों को दण्ड दिया जाना चाहिए?

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बालक के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास हेतु ।

2. रुसो ने।

3. प्राचीनकाल में अनुशासन को साध्य माना गया था।

4. किसी प्रकार का बन्धन न होना।

5. स्वतन्त्र व्यक्तिसे कहेंगे, जो अपने समाज की इच्छाओं का पालन करता है।

6. नियमों के पालन से लिया जाता है।

7. (क) व्यवस्था का सम्बन्ध वर्तमान से होता है,जबकि अनुशासन का सम्बन्ध वर्तमान एवं भविष्य दोनों से होता है।

(ख) व्यवस्था बाध्य नियन्त्रण द्वारा कायम होती है, जबकि अनुशासन

व्यक्तिके अन्तःकरण से कायम होती है।

8. (क) निरोध

(ख) प्रभाव

(ग) मोक्षण

9. निरोध व्यवस्था के समर्थक 'डण्डा छूटा और बालक बिगड़ा' के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं।

10. यह व्यवस्था बालक को दब्बू एवं नकलची बना देती है और सृनात्मक को कुंठित कर देती है।

11. मोक्षण व्यवस्था को।

12. जब अन्य सभी उपाय बेकार हो जायें।

13. (क) आदर्शहीनता

(ख) उद्देश्यहीनता

(ग) अव्यवस्थित समाज

14. आध्यात्मिकता एवं वैज्ञानिक बुद्धि दोनों में समन्वय होना आवश्यक है।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

एन.आर.स्वरूप सक्सेना – शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त, आर0 लाल बुक डिपो मेरठ, 2005

नील कमल – शिक्षा सिद्धान्त, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1993

डॉ. राम शकल पाण्डेय – शिक्षा की दार्शनिक एंव समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2005

डॉ. राम शकल पाण्डेय – उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षक विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2005

रमन विहारीलाल – शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, शिवाजी रोड, मेरठ

लाल जी त्रिपाठी एवं	–	शिक्षा और समाज,
ओम नरायण लाल श्रीवास्तव	-	द्विवेदी प्रकाशन मन्दिर, गोरखपुर, 2005
एस0के0 पाल, एल0एन0 गुप्त मदन मोहन	–	शिक्षा और समाज, न्यू कैलाश प्रकाशन,इलाहाबाद, 2006
सत्यदेव सिंह	–	शिक्षा सिद्धान्त एवं दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1984
एस0एस0 माथुर	–	शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा,2007/2008
सफाया,शैदा,शुक्ला	–	उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, धनपतराय पब्लिशिंग कम्पनी (प्रा0)लिमिटेड नई दिल्ली-2005
Alberty H.B. and Bode B.D.	–	Educational Freedom & Democracy Newyark Appelton, 1938
Badley, W.C.	–	School and Society, Sep. 8. 1945
Bosanqnet A. K.	–	The Principle of Individuaity and Value 1912 Macilian
Mathur, S.S.	–	A Sociological Approach to Indian Education
Pandey, R. S.	–	Principle of Education
Brubacher J. S.	–	(Editor) The Public School and Spiritual values New York Harper1944